'शिव' साहित्य ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–४

मन्त्र-प्रतिलोम-दुर्गासप्तशती

पाठविधि-कवच-अर्गला-कीलक-रात्रिसूक्त-अपराजिता-विद्याप्रयोगादि-विविधविषयोपेता

सम्पादक

देवरिया-जनपदान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति वाराणसी निवासी

व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-

आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र शास्त्री

प्रकाशक

शिव साहित्य संस्थान

(प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रकाशक तथा विक्रेता)

वाराणसी–२२१००१

प्रथम संस्करण]　　सन् १९८२ ई०　　[मूल्य : १५.००

स्वर्गीय स्नेहगर्भा

मातृचरण जयन्ती

की

पुण्य स्मृति में

सादर

स म र्पि त

पद्य रूप में जिस ज्ञान-गरिमा से सतत सन्तुष्टि दी,
विद्या, विवेक, विनीत भावों से हृदय को पुष्टि दी।
उन भावनाओं को जननि ! श्रद्धा-सुमन के रूप में-
सादर समर्पित चरण में लो भेंट भक्ति स्वरूप में।।

चरण-सेवी

—'शिवदत्त मिश्र'

प्राक्कथन

यह सर्वविदित है कि दुर्गासप्तशती के पाठ एवं नवार्ण मन्त्र के जप से साधकों की सभी सिद्धियाँ यथा-शीघ्र प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि आश्विन एवं चैत्र मास की दोनों नवरात्रों में और वैसे भी, प्रति-दिन असंख्य आस्तिक जनता दुर्गा सप्तशती का पाठ ब्राह्मणों द्वारा तथा स्वयं भी करती-कराती है क्योंकि परब्रह्म परमात्मा की एक यही शक्ति है, जो अपनी आवश्यकतानुसार व्यवहारकाल में चारों रूप में परिणत होती है। अर्थात् वही शक्ति पुरुषों में विष्णु, भोग में भवानी, युद्ध में जगदम्बा दुर्गा और प्रलयकाल में काली रूप में प्रकट होकर कार्य करती है। कहा भी गया है—

'एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य, भिन्नाश्चतुर्धा व्यवहारकाले।
पुरुषेषु विष्णुर्भोगे भवानी, समरे च दुर्गा प्रलये च काली ॥'

दुर्गा सप्तशती की ही परम्परा में प्रस्तुत पुस्तक **'मन्त्र-प्रतिलोम दुर्गा सप्तशती'** भी है, जिसके नाम से प्रायः अधिक तान्त्रिक साधक परिचित हैं, परन्तु पुस्तक न मिलने से इसका प्रचार–प्रसार भी बहुत कम हो गया था। और साधकों को इसके अभाव में बड़ी कठिनाई हो रही थी।

इन असुविधाओं को ध्यान में रखकर ही मैंने अपने चि० पौत्र **श्री ओम प्रकाश मिश्र** के विशेष सानुनय साग्रह पर प्रस्तुत पुस्तक का संकलन-सम्पादन किया है। सभी कामनाओं की सिद्धि हेतु यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी, महत्त्वपूर्ण एवं सद्यः फलदायक सिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ है। इसके विधि-विधान पूर्वक पाठ से बहुत कम समय में ही साधकों के सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।

वैसे, इसका पाठक्रम भी बहुत सरल एवं सुगम है। इसमें अध्याय क्रम न देकर मात्र सर्व-प्रथम तेरहवाँ अध्याय का 'ॐ सावर्णिर्भविता मनुः ॥१॥' फिर पहला अध्याय 'मार्कण्डेय उवाच ॥ २ ॥' पुनः तेरहवाँ एवं प्रथम अध्याय के विलोम-अनुलोम-क्रम से उवाच आदि के साथ सात-सौ मन्त्रों का उल्लेख है। अन्त में देवी सूक्त का पाठ कर नवार्ण मन्त्र का जप है। पुनः रहस्यत्रय के पाठ का भी विधान है।

इसके पाठ-विधान में बताया गया है कि—

'अन्त्या-ऽऽद्या-ऽर्क-द्वि-त्रि - दिगब्ध्यङ्केष्विभर्तवः ।
अश्वोऽश्व इति सर्गानां शापोद्धारो ह्यनुक्रमः ॥'—गुप्तवती दुर्गा प्रदीप

अर्थात् सप्तशती का पहले तेरहवाँ अध्याय के पश्चात् पहला, बारहवाँ, दूसरा, ग्यारहवाँ अध्याय, पुनः तीसरा, दसवाँ एवं नवाँ, पश्चात् पाँचवाँ, आठवाँ, छठा और सातवाँ दो बार यानी तेरहवाँ तथा प्रथम अध्याय के विलोम एवं अनुलोम पाठ एक साथ करें। इसी प्रकार बारह और द्वितीय, ग्यारह एवं तृतीय अध्याय, दशम और चौथा, पुनः नवम, पंचम, आठवाँ, छठा तथा सातवें अध्याय के पाठ-क्रम से विलोम (उल्टा) और अनुलोम (सीधा) संयुक्तरूप से पाठ करें। शापोद्धार का यही क्रम है। अर्थात् पहले अनुलोम पश्चात् विलोम, पुनः अनुलोम पाठ करने से साधक शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है।

इसमें पाठविधि, दुर्गा कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, नवार्ण मन्त्र-जपविधि, रात्रिसूक्त, सप्तशती-न्यास और ध्यान एवं सप्तशती पाठ दिये गये हैं। अन्त में उत्तर न्यास, देवीसूक्त का पाठ, नवार्ण-मन्त्र, रहस्यत्रय एवं सर्वसिद्धि प्रदायक अपराजिता विद्या-प्रयोग, देव्यपराध क्षमापनस्तोत्र, सप्तश्लोकी दुर्गा, दुर्गा-चालीसा एवं आरती आदि अनेक विषय दिये गये हैं। इसका संकलन-सम्पादन भी मैंने कई हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर बड़ी सावधानी के साथ किया है। फिर भी, मानव-दोष से सम्भव त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में हमें चि० **श्री ओम प्रकाश मिश्र** से विशेष सहायता मिली है। इसके लिए उनके उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ। यदि इससे दुर्गा उपासना प्रेमी तान्त्रिक साधकों का कुछ भी उपकार हो सकेगा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

—शिवदत्त मिश्र शास्त्री
सी० के. ५।२६ ए.
भिखारीदास लेन, वाराणसी-१

शिव साहित्य संस्थान
वाराणसी-१
फरवरी, १९८२ ई०

शुभ-कामना

अनन्त श्रीविभूषित, ऊर्ध्वाम्नाय श्री काशी-सुमेरु-पीठाधीश्वर, जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज

भारतीय संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन करने पर यह बात सुस्पष्ट कही जा सकती है कि समस्त दृश्याऽदृश्य विश्व प्रपञ्च उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी पराम्बा आद्याशक्ति का विलास है। कहा भी गया है—'**चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतो।**' भगवती पराम्बा करुणामयी चिन्मयी स्वरूपा हैं। साधक सम्प्रदाय में माता का स्थान सर्वोच्च माना गया है। माँ कभी भी कुमाता नहीं हो सकती। भगवान् आद्यशङ्कराचार्य ने भगवती पराम्बा की स्तुति करते हुए करुणार्द्र भाव से ओत-प्रोत माता को बतलाया है –'**कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।**'

पराम्बा आद्याशक्ति दुर्गा हैं। माँ दुर्गाकी उपासना विभिन्न स्वरूपों में सनातन काल से चली आ रही है। उस उपासना-पद्धति में दुर्गासप्तशती का पाठ भी अपना उच्च एवं विशिष्ट स्थान रखता है। कल्प वृक्ष एवं काम धेनु के समान ही नहीं अपितु भुक्ति-मुक्ति उभय प्रदातृत्व शक्ति रखने के कारण उनसे विशिष्ट स्थान रखता है। शक्ति-उपासकों के लिए भगवती शक्ति की उपासना करने वालों के हाथ में हस्तामलकवत् भोग-मोक्ष दोनों निहित हैं। कहा भी है—'**भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।**' सप्तशती

पाठ की विधियाँ विविध प्रकार की शक्ति सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। शिव-साहित्य-संस्थान द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक **'मन्त्र-प्रतिलोम-दुर्गा-सप्तशती'** की प्रक्रिया भी साधक को अनुष्ठान करने पर झटिति कामदुघा है।

अतएव, ग्रहशान्ति-पद्धति, शिव-रहस्य, हनुमद्-रहस्य, राम-रहस्य, बगलामुखी-रहस्य, गायत्री-रहस्य, वांछा-कल्पलता, दुर्गा-सप्तशती, वाल्मीकिरामायण, भगवद्गीता एवं लघुसिद्धान्त कौमदी आदि शताधिक ग्रन्थों के निर्माता सुप्रसिद्ध पण्डित-धौरेय **श्री शिवदत्तजी मिश्र** ने इसका प्रणयन कर साधक सम्प्रदाय का महान् उपकार किया है। सर्वांग परिपूर्ण इस पुस्तकमें दुर्गा-कवच, अर्गलास्तोत्र, कीलक, नवार्ण मन्त्र जप-विधि, रात्रि-सूक्त, देवी-सूक्त, रहस्य-त्रय, हवन-प्रयोग, अपराजिता-विद्या-प्रयोग एवं अनेक स्तुति-स्तोत्रादि विषयों के स्पष्ट रूप से वर्णन द्वारा **श्री मिश्रजी** ने प्रस्तुत पुस्तक में चार चाँद लगा दिये हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि साधक गण इस पुस्तक को अपना कर इसकी पद्धति के अनुष्ठान-द्वारा राष्ट्र एवं समाज में शक्ति की महत्ता को वृद्धिगत करने में पूर्ण सफल होंगे।

शङ्करानन्द सरस्वती
(जगद्गुरु शङ्कराचार्य)

धर्म संघ, दुर्गाकुण्ड
वाराणसी
फाल्गुन कृष्ण ५, २०३८

प्रस्तुत संस्करण की विशेषता

मन्त्र-प्रतिलोम दुर्गासप्तशती का यह अपूर्व संस्करण मेरे पूज्य पितामह शताधिक ग्रन्थों के लेखक-सम्पादक एवं अनुवादक **आचार्य पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र जी** ने, अपने व्यस्त-कार्य-क्षणों में भी मेरे साग्रह अनुरोध पर तैयार किया है।

शाक्त-दर्शन की परिचायिका प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों में से साधक **'यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।'** के अनुसार जिसकी जब इच्छा करता है, तभी वह उसे निश्चित रूप से प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक का संशोधन-सम्पादन कई दुर्लभ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर आधुनिक शैली में सभी श्लोकों को पृथक्-पृथक् करके विशुद्ध रूप में किया गया है। पुस्तक कहीं प्राप्त न होने के कारण इसका प्रचार-प्रसार भी अधिक नहीं था। परन्तु तान्त्रिक साधकों की माँग तो बराबर थी ही।

इसमें कवच, अर्गला, कीलक, रात्रि सूक्त, देवी सूक्त, रहस्यत्रय और अपराजिता विद्या-प्रयोग एवं देव्यपराध-क्षमापन स्तोत्र आदि अनेक पाठोपयोगी विषय दिये गये हैं।

आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि इससे तान्त्रिक साधकों का विशेष लाभ होगा। अन्त में भूत भावन भवानीपति भगवान् श्री विश्वनाथ के श्री चरणों में सतत प्रार्थना है कि आचार्य-श्री को स्वस्थ दीर्घायुष्य प्रदान करें, जिससे उनके वैदुष्यपूर्ण कृतियों से हम लोग सदा-सर्वदा लाभान्वित होते रहें।

माघी पूर्णिमा
८ फरवरी, १९८२

ओम प्रकाश मिश्र
१५।५२, सुड़िया, वाराणसी-१

शिव-पंचदशी

जनपद देवरिया मण्डलान्तर्गत 'मझौली' ग्राम है,
जो विश्व-विश्रुत मल्लजन का चिर पुरातन धाम है।
इतिहास बतलाता यहाँ के नृपति ब्राह्मण भक्त थे,
यज्ञादि द्वारा ईश-चरणों में सदा अनुरक्त थे ॥ १ ॥

पुर के अनेकों भाग थे जिनमें सवर्ण स्ववर्ग के,
सुविधा सहित नित लूटते आनन्द मानो स्वर्ग के।
उन विविध वर्णों में विशिष्ट पुनीत कश्यप वंश के,
सद्-विप्र सम्पूजित रहे चिर काल से हरि अंश के ॥ २ ॥

भगवान् पुरुषोत्तम अदिति के गर्भ से संभूत हो,
गौरव दिया अपने पिता कश्यप अदिति के पूत हो।
बलि को मिला पाताल देवों को मिला सुरलोक था,
भगवान् वामन ने मिटाया इन्द्र का चिर शोक था ॥ ३ ॥

ले जन्म प्रभु ने स्वयं कश्यप गोत्र को सम्मान दे,
वरवंश को उज्ज्वल किया था परम पावन मान दे।

कालान्तरों से विज्ञ, गरिमाशील, विद्याके धनी,
इस गोत्र के गौरव-शिरोमणि विप्रजन हैं अग्रणी ॥ ४ ॥
अपनी अखण्ड सुकीर्ति से प्रख्यात जगती में सदा,
सम्पूज्य होते आ रहे सब काल में वे सर्वदा ।
उनमें अलौकिक ज्ञान-गरिमा और बुद्धि-विवेक से,
सम्मान्य जो उस राजवंश सभासदों में एक थे ॥ ५ ॥
मेरे पितामह पूज्यवर 'श्रीकान्त मिश्र' उदार थे,
आस्तिक जनों में अग्रणी उत्कृष्ट विमल विचार थे ।
दो तनय उनके 'सन्तशरण' व 'सत्यनारायण' रहे,
विद्या, विवेक, विनीत-अतिशय शील पारायण रहे ॥ ६ ॥

अग्रज सुहृद् 'श्री सन्तशरण' विशिष्ट सद्-व्यवहार से,
सम्पूज्य थे वे सर्व-प्रियता के सुलभ सत्कार से ।
आत्मज उन्हीं के हम हुए दो सौम्य सुन्दर वेश के,
जननी 'जयन्ती' की कृपा के पात्र स्नेह विशेष के ॥ ७ ॥

अग्रज हमारे सदय पण्डित 'जगन्नाथ' प्रसिद्ध थे,
जो चार पुत्रों के सहित सुविचार उत्कट सिद्ध थे ।
'रामावतार' समेत शिष्टाचार चारु चरित्र से,
सम्मान्य लोकोत्तर गुणों से मान पा सद्मित्र से ॥ ८ ॥

'शिवदत्त' मैं उनका अनुज चिर भारती का दास हूँ,
रखता निरन्तर प्रेरणा-वश धर्म में विश्वास हूँ।
सद्ग्रन्थ लेखन ही व्यसन जीवन परिधि के बीच है,
सम्प्राप्त कर मातेश्वरी के चरण-रज का कीच है ॥ ९ ॥

रुचि रंजनी, श्रुति धर्म-सम्मत, लोकहित की दृष्टि से,
स्वान्तः सुखों के साथ माँ के करुण कोमल वृष्टि से।
सद्-प्रेरणा पाकर निरन्तर लेखनी चलती सदा,
जो भूरि भावों से भरी आनन्द वर्द्धति सर्वदा ॥१०॥

अब तक शताधिक ग्रन्थ-रत्नों से स्वपाठक वृन्द को,
कृतकार्य हूँ रुचि धर्म-पथ मे भी बढ़ा आनन्द को।
समवाय सेवा-व्रत विमल सद्ग्रन्थ सम्मत धर्म के,
व्यवसाय अपना बन गया है एकमात्र सुकर्म के ॥११॥

दो पुत्रियाँ सौभाग्य शीला, स्नेह की प्रतिमूर्ति हैं,
जो उभय कुल की लाज-मर्यादा प्रतिष्ठा पूर्ति हैं।
इनमें परम विदुषी सुशीला, शान्त 'सावित्री' भली,
सद्वर विवेकी 'सत्यव्रत जी' को समर्पित निश्छली ॥१२॥

'पुष्पा' कनिष्ठा कलित कर्मों सहित गेह उजागरी,
श्री वर 'रमेश' निदेश की परिपालिका गुण आगरी।
स्वजनों सहित सन्तान सेवा साधना सद्धर्म में,
रहती निरत सब काल वे गृहिणी सुलभ सत्कर्म में ॥१३।

विश्वेश की अनुपम कृपा, माँ अन्नपूर्णा की दया,
पाकर अबाधित रूप से सद्ग्रन्थ लिखता हूँ नया।
है देन उनकी ही उन्हीं को यह समर्पित आज है,
अच्छा-बुरा जो कुछ बना है यह उन्हीं की लाज है ॥१४॥

सहृदय जनों के हाथ यह 'शिवदत्त' शुभप्रद फूल है,
अघराशि-नाशक उर-प्रकाशक दिव्य गुण का मूल है।
विश्वास है, समुदार पाठक-वृन्द के सद्भाव से,
होगा समादृत ग्रन्थ यह उनके मनन से चाव से ॥१५॥

इति शिव-पंचदशी समाप्त।

विषयानुक्रमणिका

दुर्गापूजन-सामग्री

केशर, चन्दन, रोरी, नारा, अबीर, बुक्का, धूपबत्ती, कपूर, सिन्दूर, ऋतुफल, दही, माला-फूल, नैवेद्य, पान, सोपाड़ी, सुगन्धित द्रव्य, चावल, वस्त्र,चढ़ाने का, रुद्राक्ष माला, आसन, पंचपात्र, आचमनी, वरण सामग्री–धोती, दुपट्टा, अँगोछा, दीया, रूई, दुर्गा की मूर्ति या फोटो, दियासलाई, यज्ञोपवीत, घी ।

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुःकुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभ-मर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥१॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुल-जन-प्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि ! विश्वम् ॥२॥

मन्त्रप्रतिलोम-दुर्गासप्तशती-पाठविधिः

साधक को चाहिए कि वह पूर्व की ओर मुख कर, कुशासन पर बैठ, आचमन और प्राणायाम करने के बाद दाहिने हाथ में जल, अक्षत, पुष्प एवं द्रव्य लेकर, 'ॐ विष्णु-र्विष्णु-र्विष्णुः' से 'पाठमहं करिष्ये' तक संकल्प-वाक्य पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे।

हस्ते जलाऽक्षत-पुष्प-द्रव्याण्यादाय, ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महा-पुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याऽद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे पुण्यप्रदेशे (वाराणस्यां तु-अविमुक्त-वाराणसीक्षेत्रे आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमभागे) विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकनाम-संवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रद-मासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथा-राशिस्थान-स्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुण-गण-विशेषण-विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ मम आत्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त-फल-प्राप्त्यर्थम् अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माऽहम् अमुकगोत्रस्य सपत्नीकस्य यजमानस्य

आयुरारोग्यैश्वर्याऽभिवृद्ध्यर्थं पुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्न-सन्ततिवृद्धि-स्थिरलक्ष्मी-कीर्ति-लाभ-शत्रुपराजय-सदभीष्टसिद्ध्यर्थं महासरस्वती-महाकाली-महालक्ष्मी-त्रिगुणात्मिका-पराम्बा-जगदम्बाप्रीत्यर्थं च मन्त्रप्रतिलोम-दुर्गासप्तशतीपाठमहं करिष्ये ।

ततः कवचाऽर्गला-कीलकानां पाठं कृत्वा, न्यासपूर्वकं नवार्णमन्त्रं जप्त्वा, रात्रि-सूक्तस्य पाठं कुर्यात् ।

दुर्गाकवचम्

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्ध-देवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः । ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कंण्डेय उवाच

यद् गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ! ॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र ! सर्वभूतोपकारकम् । देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ! ॥

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी । तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥

पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च । सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाऽष्टमम् ॥

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः । उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे । विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥
न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे । नापदं तस्य पश्यामि शोक-दुःख-भयं न हि ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते । ये त्वां स्मरन्ति देवेशि ! रक्षसे तान्न संशयः॥
ेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना । ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना । लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना । ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरण-भूषिता ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः । नानाभरण-शोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः । शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च । कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च । धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोर-पराक्रमे । महाबले महोत्साहे महाभय-विनाशिनि ॥
त्राहि मां देवि ! दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि । प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी । प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी॥
उदीच्यां पातु कौमारी ईशान्यां शूलधारिणी । ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना । जया मे चाऽग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥

अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चाऽपराजिता । शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी । त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ।
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी । कपोलौ कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शाङ्करी ।
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका । अधरे चाऽमृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठमध्ये च चण्डिका । घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला । ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी । स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च । नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत् कुक्षौ रक्षेत् कुलेश्वरी ॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी । हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा । पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी । जङ्घे महाबला रक्षेत् सर्वकामप्रदायिनी ॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी । पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत् पादाऽधःस्थलवासिनी ॥
नखान् दंष्ट्रा कराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी । रोमकूपेषु कौमारी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥
रक्त-मज्जा-वसा-मांसान्यस्थि-मेदांसि पार्वती । अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा । ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥

मं. प्र. ४ दु. क. ४

शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा । अहङ्कारं मनो बुद्धिं रक्षेन् मे धर्मधारिणी ॥
प्राणाऽपानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् । वज्रहस्ता च मे रक्षेत् प्राणकल्पं च शोभना ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी । सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी । यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत् पशून्मे रक्ष चण्डिके । पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा । राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥
रक्षाहीनं तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु । तत्सर्वं रक्ष मे देवि ! जयन्ती पापनाशिनी ॥
पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः । कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥
तत्र तत्राऽर्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः । यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् । निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ॥
त्रैलोक्ये तु भवेत् पूज्यः कवचेनाऽऽवृतः पुमान् । इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ॥
यः पठेत् प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयाऽन्वितः । दैवीकला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ॥
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः । नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूता-विस्फोटकादयः ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चाऽपि यद्विषम् । अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्र-यन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव कुलजाश्चोपदेशिकाः । सहजाः कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः । ग्रह-भूत-पिशाचाश्च यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः ॥

ब्रह्म-राक्षस-वेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः । नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ॥
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् । यशसा वर्धते सोऽपि कीर्ति-मण्डित-भूतले ॥
जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा । यावद् भूमण्डलं धत्ते स-शैल-वनकाननम् ॥
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्र-पौत्रिकी । देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः । लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥

इति वाराहपुराणे हरिहर-ब्रह्म-विरचितं देव्याः कवचं समाप्तम् ॥ १ ॥

अर्गलास्तोत्रम्

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मी-देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥
जय त्वं देवि ! चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि । जय सर्वगते देवि ! कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥
मधु-कैटभ-विद्रावि विधातृ वरदे नमः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
महिषासुर-निर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनी। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनी। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनी। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
सुरासुर-शिरोरत्न-निघृष्ट-चरणेऽम्बिके। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
प्रचण्ड-दैत्य-दर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्र-संस्तुते परमेश्वरि !। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
कृष्णेन संस्तुते देवि ! शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
हिमाचल-सुतानाथ-संस्तुते परमेश्वरि !। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

इन्द्राणी पतिसद्भाव-पूजिते परमेश्वरि ! । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
देवि ! प्रचण्ड-दोर्दण्ड-दैत्यदर्प-विनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥
देवि ! भक्तजनोद्दाम-दत्तानन्दोदयेऽम्बिके । रूप देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् । तारिणीं दुर्गसंसार-सागरस्य कुलोद्भवाम् ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः । स तु सप्तशतीसंख्या-वरमाप्नोति सम्पदाम् ॥

इति श्रीदेव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

कीलकस्तोत्रम्

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

विशुद्ध-ज्ञान-देहाय त्रिवेदी दिव्य-चक्षुषे । श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥१
सर्वमेतद् विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् । सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्य तत्परः ॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि । एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति॥
न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते । विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम्॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः । कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ।

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः। समाप्नोति सुपुण्येन तां यथावन्निमन्त्रणाम्॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः। कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति। इत्थं रूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम्॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्। स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते। नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात्॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति। ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः॥
सौभाग्यादि च यत् किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने। तत्सर्वं त्वत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम्॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः। भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत्॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः। शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः।

इति श्रीभगवत्याः कीलकस्तोत्रं समाप्तम्॥ ३॥

नवार्णमन्त्र-जपविधिः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे न्यासे च विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्म-विष्णु-रुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः, सर्वाङ्गे।

करादिन्यासः

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासायाम्।

ॐ यै नमः, वामनासायाम् । ॐ विं नमः, मुखे । ॐ च्चें नमः, गुह्ये । एवं विन्यस्याऽष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात् ।

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ।

ध्यानम्

घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेह-समुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम् ॥ १ ॥

खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाददशकां सेवे महाकालिकां

यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।। २ ।।

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुःकुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ।। ३ ।।

ततः 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इति मालां सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ।

माला-प्रार्थना

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।
अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे । जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ।।

तत्पश्चात्, 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति नवार्णमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् । ततः—

गुह्याऽनिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ।।

इति पठित्वा, देव्या वामकरे जपं निवेदयेत् ।

इति नवार्णमन्त्र-जप-विधिः समाप्ता ।

रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि ! जननी परा ॥ ३ ॥
त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत् पाल्यते देवि ! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृति-रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५ ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥ ६ ॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय-विभाविनी ।
कालरात्रि-र्महारात्रि-र्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७ ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ८ ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी परिघायुधा ॥ ९ ॥
सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
पराऽपराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥
यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ११ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत् पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ १३ ॥

करादि-हृदयादि-न्यासः

१. सर्वस्वरूपे सर्वेशे अस्त्राय फट्, करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।

२. खड्गिनी शूलिनी घोरा हृदयाय नमः, अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

३. खड्ग-शूल-गदादीनि नेत्रत्रयाय वौषट्, कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

४. शूलेन पाहि नो देवि शिरसे स्वाहा, तर्जनीभ्यां नमः।

५. सौम्यानि यानि रूपाणि कवचाय हुम्, अनामिकाभ्यां नमः।

६. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च शिखायै वषट्, मध्यमाभ्यां नमः।

इति करादि-हृदयादिन्यासः।

ध्यानम्—घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलसच्छीतांशु-तुल्यप्रभाम्।
गौरीदेह-समुद्भवां त्रिजगतामाधार-भूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादि-दैत्यार्दिनीम्॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-संस्कृता

मन्त्रप्रतिलोम-दुर्गासप्तशती

विनियोगः— ॐ अस्य श्रीविलोम-अनुलोम सहित-सप्तशत्या उत्तम-प्रथम-मध्यम-चरितानां रुद्र-ब्रह्म-विष्णु-ऋषयः, श्रीमहासरस्वती-महाकाली-महालक्ष्मी-देवताः, अनुष्टुप्गायत्री-त्रिष्टुप्-छन्दांसि, भीमा-नन्दा-शाकम्भरीशक्तयः, भ्रामरी-रक्तदन्तिका-दुर्गाबीजानि, सूर्या-ऽग्नि-वायुस्तत्त्वानि, साम-ऋग्-यजुर्वेदाध्यानानि, ॐ अद्याऽमुक-गोत्रः, अमुकशर्माऽहं मम (यजमानस्य च) सकलकामनासिद्ध्यर्थं श्रीमहासरस्वती-महाकाली-महालक्ष्मीदेवता-प्रीत्यर्थे विलोम-अनुलोम सहित-सप्तशतीपाठे विनियोगः ।

दाहिने हाथ में जल लेकर उपर्युक्त विनियोग-वाक्य पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे, पुनः 'खड्ग चक्र॰' श्लोक पढ़कर भगवती दुर्गाका ध्यान कर पाठ करे।

ध्यानम्—खड्गं चक्र-गदेषु चाप परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाददशकां सेवे महाकालिकाम्
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥

ॐ सावर्णिर्भविता मनुः ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २ ॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ ३ ॥
सावर्णि सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥ ४ ॥
इति दत्वा तयोर्देवी यथाऽभिलषितं वरम् ।
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ ५ ॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ७ ॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥ ८ ॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ ९ ॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥१०॥
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥११॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबल-दण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥१२॥
सावर्णिको मनुर्नाम भवान् भुवि भविष्यति ॥१३॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥१४॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद् विस्त्रतः ॥१५॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्राऽपि स्वपुरे ततः ॥१६॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥१७॥
ततो मृगया व्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥१८॥
स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥१९॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥२०॥

देव्युवाच ॥ २१ ॥

तस्थौ कञ्चित् स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥२२॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्ण-मानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥२३॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥२४॥
ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥२५॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्तीसदामदः ॥२६॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २७ ॥

मम वैरिवशं यातः कानभोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसाद-धन-भोजनैः ॥२८॥
यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप ! त्वया च कुलनन्दन ! ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥२९॥
अनुवृत्तिं ध्रुवन्तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्-व्यय-शीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥३०॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चाऽन्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥३२॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥३३॥
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः ।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥३४॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रा सृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥३५॥
स-शोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥३६॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्या पुष्प-धूपा-ऽग्नि-तर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥३७॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥३८॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीं मयीम् ॥३९॥

वैश्य उवाच ॥ ४० ॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ! ।

मं. प्र ८

संदर्शनार्थमम्बाया नदी-पुलिन-संस्थितः ॥४१॥
समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥४२॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥४३॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धन-लोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥४४॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥४५॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाऽकुशलात्मिकाम् ॥४६॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ४७ ॥

प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चाऽत्र संस्थितः ।
किन्नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किन्नु साम्प्रतम् ॥४८॥

दु. स. ८

आराधिता सैव नृणां भोग-स्वर्गापवर्गदा ॥४९॥
कथं ते किन्नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किन्नु मे सुताः ॥५०॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज ! शरणं परमेश्वरीम् ॥५१॥

राजोवाच ॥ ५२ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्-विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथवाऽन्ये विवेकिनः ॥५३॥
यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्र-दारादिभिर्धनैः ॥५४॥
एतच्चे कथितं भूप ! देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥५५॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥५६॥

ऋषिरुवाच ॥ ५७ ॥

वैश्य उवाच ॥ ५८ ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप-गन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥५९॥
एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥६०॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥६१॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥६२॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥६३॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ।

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥६४॥
व्याप्तं तयैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ! ।
महाकाल्या महाकाले महामारी स्वरूपया ॥६५॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥६६॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥६७॥
करोमि किं यन्नमनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥६८॥
एवं भगवती देवी सा नित्याऽपि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप ! जगतः परिपालनम् ॥६९॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ७० ॥

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ।

निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥७१॥
ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥७२॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥७३॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥७४॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथापुरा ॥७५॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्य-पार्थिवौ ॥७६॥
इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥७७॥

राजोवाच ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ७९ ॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥८०॥

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥८१॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥८२॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
मम प्रभावात् सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥८३॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥८४॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु सङ्ग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥८५॥
स्वजनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।
एवमेष तथाऽहं च द्वावप्यन्त-दुःखितौ ॥८६॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।

आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥८७॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥८८॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वाऽपि शत्रुभिः ।
सिंह-व्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥८९॥
ममाऽस्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥९०॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि दावाग्नि-परिवारितः ॥९१॥

ऋषिरुवाच ॥ ९२ ॥

तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥९३॥
ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥९४॥

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्ट-दैत्य-निबर्हणम् ॥९५॥
विषयश्च महाभाग ! याति चैवं पृथक्-पृथक् ।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथाऽपरे ॥९६॥
प्रीतिर्मे क्रियते साऽस्मिन् सुकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुत हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥९७॥
केचिद् दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु तेन हि केवलम् ॥९८॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥९९॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशु-पक्षि-मृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृग-पक्षिणाम् ॥१००॥

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पाऽर्घ्य-धूपैश्च गन्ध-दीपैस्तथोत्तमैः ॥१०१॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥१०२॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षो-भूत-पिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१०३॥
कणमोक्षादृतान्मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ।
मानुषाः मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥१०४॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
सङ्घातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१०५॥
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यति ।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥१०६॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च निभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१०७॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थिति-कारिणा ।
तन्नाऽत्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥१०८॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १०९ ॥
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ ११० ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १११ ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराऽचरम् ॥ ११२ ॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ ११३ ॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ ११४ ॥
सर्वाबाधा-विनिर्मुक्तो धन-धान्य-सुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ ११५ ॥
संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ११६ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्ति-समन्वितः ॥ ११७ ॥

राजोवाच ॥ ११८ ॥

जानताऽजानता वाऽपि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीक्षिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ ११९ ॥

भगवन् का हि सा देवि ! महामायेति यां भवान् ॥ १२० ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १२१ ॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ! ।
यत्प्रभावा च सा देवि ! यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ १२२ ॥
यत्रैतत् पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्-विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ १२३ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ! ॥ १२४ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारी-समुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पात माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ १२५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १२६ ॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ १२७ ॥
नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ १२८ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतो यौघात् कदाचित् सम्भविष्यति ॥ १२९ ॥
तथाऽपि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ १३० ॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्ट-वियोजनम् ॥ १३१ ॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ १३२ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १३३ ॥

आस्तीर्य-शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधु-कैटभौ ॥ १३४ ॥
मधु-कैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद्-वधं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥ १३५ ॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ १३६ ॥
एभिस्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते य समाहितः ।
तस्याऽह सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १३७ ॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्र-हृदयस्थितः ॥ १३८ ॥

देव्युवाच ॥ १३९ ॥

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्र-कृतालयाम् ।

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम् ॥ १४० ॥
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ १४१ ॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १४२ ॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ १४३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ १४४ ॥

तदाऽहं भ्रामरं रूपं कृत्वा सङ्ख्येय-षट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय बधिष्यामि महासुरम् ॥ १४५ ॥
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥ १४६ ॥
भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ १४७ ॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिकास्थिता ।

अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ १४८ ॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ १४९ ॥
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि ! जननीपरा ।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत् ॥ १५० ॥
दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाऽहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ १५१ ॥
त्वयैतत् पाल्यते देवि ! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ १५२ ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च बधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ १५३ ॥

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ १५४ ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराशाकैरवृष्टेः प्राणधारकैः ॥ १५५ ॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय-विभाविनी ॥ १५६ ॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ १५७ ॥
कालरात्रि-र्महारात्रि-र्मोहरात्रिश्च दारुणा ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरीस्त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ १५८ ॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥१५९॥

मं. प्र. २५

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥१६०॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥१६१॥
शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ।
सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥१६२॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् ।
रक्तादन्ता भविष्यन्ति दाडिमी-कुसुमोपमाः ॥१६३॥
पराऽपराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किञ्चित क्वचिद्-वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके ॥१६४॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥१६५

दु. स. २५

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥१६६॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल-निवासिनी ॥१६७॥
सोऽपि निद्रा वशंनीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
विष्णुः शरीर-ग्रहणमहमीशान एव च ॥१६८॥
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥१६९॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारर्देवि संस्तुता ॥१७०॥

देव्युवाच ॥ १७१ ॥

मोहयैतो दुराधर्षावसुरौ मधु-कैटभौ ।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥१७२॥
सर्वाबाधा प्रशमनं त्रैलोकस्याऽखिलेश्वरि ! ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्-वैरिविनाशनम् ॥१७३॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥१७४॥

देवा ऊचुः ॥ १७५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ १७६ ॥

वरदाहं सुरगणाः वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥१७७॥
एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥१७८॥

देव्युवाच । १७९ ॥

विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधु-कैटभौ ।
नेत्रास्य-नासिकाबाहु-हृदयेभ्यस्तथोरसः ॥१८०॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि ! विश्वार्तिहारिणि ! ।

मं. प्र. २७ दु. स. २७

त्रैलोक्य-वासिनीमीड्ये लोकानां वरदा भव ॥१८१॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्त-जन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥१८२॥

देवि ! प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाऽऽशु
उत्पात पाक-जनितांश्च महोपसर्गान् ॥१८३॥

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधु कैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य-पराक्रमौ ॥१८४॥
विश्वेश्वरि ! त्वं परिपाऽसि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥१८५॥

क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥१८६॥

रक्षांसि यत्रोग्र-विषाश्च-नागाः, यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धि-मध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥१८७॥

पञ्चवर्ष-सहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामाया - विमोहितौ ॥१८८॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽति-महान्धकारे, विभ्रामयत्येतदतीव-विश्वम् ॥१८९॥

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥१९०॥

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाऽद्य, धर्मद्विषां देवि ! महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिं, कृत्वाऽम्बिके तत्प्रकरोति काऽन्या ॥१९१॥

श्रीभगवानुवाच ॥ १९२ ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा, रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥१९३॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥१९४॥

असुरा-सृग्-वसा-पङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥१९५॥

किमन्येन वरेणाऽत्र एतावद्धि वृतं मम ॥१९६॥

हिनस्ति दैत्यतेजां स स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि ! पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥१९७॥

ऋषिरुवाच ॥ १९८ ॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषाः सुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि ! नमोऽस्तु ते ॥१९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥२००॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभूतेभ्यः कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ॥२०१॥
विलोक्यताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥२०२॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति-समन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥२०३॥

ऋषिरुवाच ॥ २०४ ॥

मेधे सरस्वति वरे भूतिबाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०५॥
तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्ख-चक्र-गदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसीतयोः ॥२०६॥

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२०७॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥२०८॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमाला-विभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२०९॥

ऋषिरुवाच ॥ २१० ॥

शिवदूती स्वरूपेण हतदैत्य महाबले ! ।
घोररूपे महारावे नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२११॥
देवासुरमभूद् युद्धं पूर्णमब्द-शतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥२१२॥

म. प्र. ३२ दु. स. ३२

किरीटिनिमहावज्रे सहस्र-नयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२१३॥
तत्राऽसुरैर्महावीर्यै देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिद्रोऽभून् महिषासुरः ॥२१४॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्य-त्राणसहिते नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२१५॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेश - गरुडध्वजौ ॥२१६॥
गृहीतोऽग्र - महाचक्रे ! दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१७॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुर-चेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाविभव-विस्तरम् ॥२१८॥

मं. प्र. ३२ २ दु. स. ३२

शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-गृहीत-परमायुधे ! ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२१९॥
सूर्येन्द्राग्न्य-निलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाऽधिकारान् सस्वयमेवाऽधितिष्ठति ॥२२०॥
मयूर-कुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२२१॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥२२२॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे ! महावृषभ-वाहिनि ! ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२२३॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारि-विचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥२२४॥

हंसयुक्त-विमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ! ।
कौशाम्भः क्षरिके देवि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥१२५॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटी-कुटिलाननौ ॥२२६॥
शरणागत-दीनार्त-परित्राण-परायणे ! ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२२७॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥२२८॥
सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते सनातनि ! ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२२९॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥२३०॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२३१॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वाला-व्याप्त-दिगन्तरम् ॥२३२॥
कला-काष्ठादि-रूपेण परिणाम-प्रदायिनि ! ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३३॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥२३४॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥२३५॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाऽभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥२३६॥

सर्वभूता यदा देवि ! स्वर्गमुक्ति-प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥२३७॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाऽभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥२३८॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥२३९॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥२४०॥
त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या, विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि ! समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुविमुक्तिहेतुः ॥२४१॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावतेजसा ॥२४२॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका, महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ २४३ ॥
भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ २४४ ॥
देवि ! प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि! चराऽचरस्य ॥२४५॥
ततः समस्त-देवानां तजोजराशि-समुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥२४६॥
देव्याहते तत्र महासुरेन्द्रे, सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-लाभाद्, विकासि-वक्त्राब्ज-विकासिताशाः।२४७॥
शूलं शूलाद् विनिविष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ २४८ ॥

मं. प्र. ३८ दु. स. ३८

ऋषिरुवाच ॥२४९॥

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२५०॥
जज्वलुश्चाऽग्नयश्शान्ताः शान्ता-दिग्जनित-स्वनाः ॥२५१॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२५२॥
अवादयंस्तथैवाऽन्ये ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद् दिवाकरः ॥२५३॥
कालदण्डाद्यमोदण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२५४॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्ष-निर्भर-मानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वाः ललितं जगुः ॥२५५॥

मं. प्र. ३९ दु. ब. ३९

समस्त-रोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥२५६॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२५७॥
क्षीरोदश्चामलंहारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५८॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाऽभवन्नभः ॥२५९॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६०॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलान् पृथ्वीं साऽब्धिद्वीपां स-पर्वताम् ॥२६१॥

अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२६२॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६३॥
अस्त्राण्यनेक-रूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२६४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिका-निधनेच्छया ॥२६५॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चाऽतिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२६६॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२६७॥

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणि-विभूषितम् ॥२६८॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्ध-मुनिविस्मय-कारकम् ॥२६९॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥२७०॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२७१॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्यानादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥२७२॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२७३॥

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥२७४॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत ॥२७५॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामुचुः सिंहवाहिनीम् ॥२७६॥
च्छिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथाऽपि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥२७७॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्ति-नम्रात्म-मूर्तयः।
दृष्ट्वा समस्त संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥२७८॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिका-निधनोद्यतः ॥२७९॥

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदितिक्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥२८०॥
तस्यापतत एवासु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥२८१॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्त-लोक-त्रयान्त्विषा ॥२८२॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥२८३॥
पादाक्रान्त्यान्नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥२८४॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥२८५॥

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥२९२॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद् भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥२९३॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्वाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजि-सहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥२९४॥
ततः प्रववृते युद्ध देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥२९५॥
वृतो रथानां कोटया च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
विडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥२९६॥

ऋषिरुवाच ॥ २९७ ॥

युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।

अन्ये च तत्रायुतशो रथ-नाग-हयैर्वृताः ॥२९८॥
अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥२९९॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटि-कोटि-सहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥३००॥

देव्युवाच ॥ ३०१ ॥

हयानां च वृतो युद्धेतत्राऽभून् महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥३०२॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुखालयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥३०३॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशु-पट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित् पाशांस्तथापरे ॥३०४॥

म. प्र. ४७ दु. स. ४७

एकैवाऽहं जगत्यत्र द्वितीया काममापरा ।
पश्यैता दुष्ट ! मय्येव विशन्त्यो मद्-विभूतयः ॥३०५॥

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
साऽपि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥३०६॥

देव्युवाच ॥ ३०७ ॥

लीलयैव प्रचिच्छेद निज-शस्त्रास्त्र - वर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥३०८॥

बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे याति मानिनी ॥३०९॥

मुमोचाऽसुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥३१०॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्-वचः ॥३११॥
चचारा - ऽसुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥३१२॥

ऋषिरुवाच ॥३१३॥

त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपाला-ऽसि-पट्टिशैः ॥३१४॥
केचिद्-विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चाऽपरे काली शिवदूती मृगाधिपैः ॥३१५॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवी शक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खास्तथापरे ॥३१६॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।

मं. प्र. ५९ ४

कु. घ. ५९

वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्र-विमुक्तेन तथाऽपरे ॥३१७॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥३१८॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराही तुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३१९॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वन-विमोहितान् ॥३२०॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणी-मन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३२१॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानघर्षयत्।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥३२२॥
ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्ण-शिरोधरान्।

असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३२३॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥३२४॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३२५॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृता केचिद्रणाजिरे ॥३२६॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३२७॥
श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषाञ्चिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्न-ग्रीवास्तथापरे ॥३२८॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।

हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३२९॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्न-जङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥३३०॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३१॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद् देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चाऽन्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥३३२॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३३३॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीत - परमायुधाः ।
ननृतुश्चाऽपरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥३३४॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्ति-नाशिनी ।

चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३३५॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्ग-शक्त्यृष्टि-पाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥३३६॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३३७॥
पातिते रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राऽभूत स महारणः ॥३३८॥
ततो निःशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्त-कार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥३३९॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चाऽसुरसैन्यस्य वारणासुर-वाजिनाम् ॥३४०॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।

स तदाभिहतो भूमौ मुर्च्छितो निपपात ह ॥३४१॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाऽम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृण-दारु-महाचयम् ॥३४२॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान् देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३४३॥
स च सिंहो महानादमुत्सृन् धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥३४४॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनि:स्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥३४५॥
देव्यागणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥३४६॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।

आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥३४७॥

ऋषिरुवाच ॥ ३४८ ॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाश-सस्थितैः ॥ ३४९ ॥
निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद् ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ ३५० ॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ ३५१ ॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्ग तोयवर्षेण तोयदः ॥ ३५२ ॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ ३५३ ॥

तस्य च्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ ३५४ ॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभ - महामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ ३५५ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ३५६ ॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्त-दैत्यसैन्यानां तेजोवध-विधायिना ॥ ३५७ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ ३५८ ॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ ३५९ ॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ३६० ॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीत-परमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ ३६१ ॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ ३६२ ॥
तस्मिन् निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ ३६३ ॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविविम्बमिवाम्बरात् ॥ ३६४ ॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ ३६५ ॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥ ३६६ ॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
साऽपि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ ३६७ ॥
हते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥३६८॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥३६९॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।
हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥३७०॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥३७१॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥३७२॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥३७३॥
ततः सिंहं समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥३७४॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन् मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥३७५॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान् नागान् महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥३७६॥
चिच्छेद ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥३७७॥

म.
प्र.
५९
दु.
च.
५९

ततो वेगात् समुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम् ॥३७८॥
ततो युद्धमतीवासीद्-देव्या शुम्भ-निशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥३७९॥
उदग्रश्च रणे देव्याः शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥३८०॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात् कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥३८१॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥३८२॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
सन्दष्टौष्ट-पुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥३८३॥

मं. प्र. ६०
दु. स. ६०

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥३८४॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्यया सुरसेनया ॥३८५॥
बिडालस्यासिना कायात् पातयामास वै शिरः ।
दुर्द्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥३८६॥
चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥३८७॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥३८८॥

ऋषिरुवाच ॥३८९॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।

तेषां मातृगणो जातो ननर्ता सृङ्मदोद्धतः ॥३९७॥
वेगभ्रमण-विक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥३९८॥
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥३९९॥
धुतशृङ्ग-विभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥४००॥
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डा पीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंघ-समाहतः ॥४०१॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥४०२॥
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।

देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥४०३॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥४०४॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपाताद् महासुराः ॥४०५॥
ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्ग-पाणिरदृश्यत ॥४०६॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥४०७॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून् महागजः ॥४०८॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।

ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ ४०९ ॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ४१० ॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाऽभिजघान तम् ॥ ४११ ॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं स चराऽचरम् ॥ ४१२ ॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान् महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ४१३ ॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ४१४ ॥
मच्छस्त्रपात-सम्भूतान् रक्तबिन्दून् महासुरान्।

रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वाऽगना ॥ ४१५ ॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्य-मदोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥ ४१६ ॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच काली चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ४१७ ॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं मदोद्धृत-मुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ४१८ ॥
तैश्चाऽसुरा-सृक् - सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ४१९ ॥

देव्युवाच ॥४२०॥

तस्या हतस्य बहुधा शक्ति-शूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासंञ्छतशोऽसुराः ॥४२१॥

मं. प्र. ६६ दु. स. ६६

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत् पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥४२२॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाऽहनत् पृथक् ।
मातॄः कोप-समाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥४२३॥
ऋषिरुवाच ॥४२४॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रजक्तबीजं महासुरम् ॥४२५॥
एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४२६॥
वैष्णवी चक्रभिन्नस्य रुधिरस्राव-सम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्-व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४२७॥
ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ॥४२८॥

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाऽभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४२९॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४३०॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४३१॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३२॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषाः रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्रपातातति-भीषणम् ॥४३३॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥४३४॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्त-बिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्य-बलविक्रमाः ॥४३५॥

ऋषिरुवाच ॥४३६॥

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत् पराक्रमाः ॥४३७॥
शक्रादयः सुरगणा - निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन् दुरात्मनि सुराबिले च देव्याः ।
तां तुष्टुवुः प्रणति-नम्र शिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्ष-पुलकोद्गम-चारुदेहाः ॥४३८॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४३९॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या

निःशेष - देवगण - शक्ति-समूहमूर्त्या ।
ताममम्बिकामखिल - देव - महर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥४४०॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणैस्तदासुरः ॥४४१॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभ-भयस्य मतिं करोतु ॥४४२॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४४३॥
या श्रीः स्वयं सकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः

पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजन - प्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥४४४॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाऽ'युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारि - सैनिकाः ॥४४५॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुर - क्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुर - देवगणादिकेषु ॥४४६॥
चण्डाट्ट - हासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥४४७॥
हेतुः समस्त-जगतां त्रिगुणाऽपि दोषै-

नं ज्ञायसे हरि - हरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥४४८॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्ण-दिगम्बरा ॥४४९॥
यस्याः समस्त-सुरता-समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥४५०॥
तुण्ड - प्रहार - विध्वंस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥४५१॥
या मुक्तिहेतुविरचिन्त्य महाव्रता त्व-

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त - समस्त - दोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥४५२॥

ऐन्द्री - कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघ-प्रवर्षिणः ॥४५३॥

शब्दात्मिका - सुविमलर्ग्यजुषान्निधान-
मुद्गीथरम्य - पदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥४५४॥

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥४५५॥

मेधासि देवि! विदिताखिलशास्त्रसारा, दुर्गासि दुर्ग-भवसागर-नौरसङ्गा।

श्रीःकैटभारिहृदयैककृताधिवासा, गौरीत्वमेवशशिमौलि-कृतप्रतिष्ठा ४५६

कमण्डलु - जलाक्षेप - हतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥४५७॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि-कनकोत्तम-कान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषातथापि, वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ४५८

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपात - विदारितान् ।
खाट्वाङ्ग पोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥४५९॥

दृष्ट्वा तु देवि ! कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्क - सदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तक - दर्शनेन ॥४६०॥

सा च तान् प्रहितान् वाणाञ्छूलशक्ति-परश्वधान् ।

चिच्छेद लीलयाध्मात - धनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥४६१॥
देवि ! प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तनेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥४६२॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टि - वृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवी ममरारयः ॥४६३॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मज-भृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥४६४॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः सर्वाख्यातं महासुराः ।

अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥४६५॥
धर्म्याणि देवि ! सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्याद्दतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती-प्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥४६६॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिस्ततः सा ख्यातिमागता ॥४६७॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्य - दुःख - भयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकार - करणाय सदार्द्रचित्ता ॥४६८॥
बलाबलेपादथ चेद् भवन्तो युद्धकांक्षिणः ।

तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥४६९॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
सङ्ग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥४७०॥

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥४७१॥

दृष्ट्वैव किन्न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥४७२॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।

ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥४७३॥
खड्गप्रभा - निकर - विस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्ति - निवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागताविलयमंशु - मदिन्दु - खण्ड-
योग्यानन तव विलोकयतां तदेतत् ॥४७४॥
सा चाह धूम्र - जटिलमीशानमपराजिता ।
दूत ! त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥४७५॥
दुर्वृत्त-वृत्त-शमनं तव देवि ! शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥४७६॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्ताति भीषणा ।

चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवा शतनिनादिनी ॥४७७॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समर - निष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि! वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥४७८॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुरा शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम् ॥४७९॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मद - सुरारिभवं नमस्ते ॥४८०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।

प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥४८१॥
शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घटास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥४८२॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेप-क्षिप्त - नक्षत्र-संहतिः ॥४८३॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ! ॥४८४॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या विभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥४८५॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥४८६॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।

शङ्ख - चक्र - गदा - शार्ङ्ग-खड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥४८७॥
खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लव-सङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥४८८॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥४८९॥

ऋषिरुवाच ॥ ४९० ॥

माहेश्वरी वृषारूढा - त्रिशल - वरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखा - विभूषणा ॥४९१॥
एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥४९२॥
हंसयुक्त-विमानाग्रे साक्षसूत्र - कमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥४९३॥

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥४९४॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषण - वाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥४९५॥

देव्युवाच ॥४९६॥

ब्रह्मेश-गुह-विष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥४९७॥
व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥४९८॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप ! विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्य - बलान्विताः ॥४९९॥

देवा ऊचुः ॥५००॥

तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।

देवीसिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥५०१॥
भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ॥५०२॥
धनुर्ज्या - सिंहघण्टानां नादापूरित-दिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥५०३॥
यदयन्निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥५०४॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ! ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥५०५॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥५०६॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥५०७॥

म. प्र. ८३ दु. ब. ८३

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धन - दारादि - सम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥५०८॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्य - सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥५०९॥

ऋषिरुवाच ॥५१०॥

कालका दौर्हृदामौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥५११॥
इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥५१२॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५१३॥
इत्येतत् कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।

देवीदेवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥५१४॥

अद्य सर्वबलै दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्नियान्तु स्वबलैर्वृताः ॥५१५॥

पुनश्च गौरीदेहात् सा समुद्भूता यथाऽभवत् ।
बधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भ - निशुम्भयोः ॥५१६॥

ततः कोपपराधीन - चेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥५१७॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत् कथयामि ते ॥५१८॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥५१९॥

ॐ क्लीं ऋषिरुवाच ॥५२०॥

ॐ ऋषिरुवाच ॥५२१॥

पुरा शुम्भ-निशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मद्बलाश्रयात् ॥५२२॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥५२३॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥५२४॥
तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्ड-मुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥५२५॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥५२६॥

ऋषिरुवाच ॥५२७॥

हताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवी संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५२८॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्ड-मुण्डौ महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥५२९॥
तयाऽस्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥५३०॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहास-मिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥५३१॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥५३२॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।

मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥५३३॥

देवा ऊचुः ॥५३४॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद् भूमौ सा खड्गाभितं रुषा ॥५३५॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥५३६॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्यकेशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥५३७॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥५३८॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
कालीकराल - वक्त्रान्तर्दुर्दर्श - दशनोज्ज्वला ॥५३९॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्धयै सिद्धयै कूर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥५४०॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥५४१॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥५४२॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥५४३॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५४४॥
क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥५४५॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै ॥५४६॥
असिना निहताः केचित् केचित् खट्वाङ्ग-ताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥५४७॥
नमस्तस्यै ॥५४८॥
बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥५४९॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥५५०॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥५५१॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमतस्यै ॥५५२॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।

म. प्र. १०

दु. स. १०

पादेनाक्रम्य चैवान्यमसुरसान्यमपोथयत् ॥५५३॥

नमस्तस्यै ॥५५४॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥५५५॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥५५६॥

पार्ष्णि-ग्राहांकुशग्राहि-योध-घण्टा - समन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥५५७॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५५८॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥५५९॥

नमस्तस्यै ॥५६०॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललन-भीषणा ।

निमग्ना रक्तनयना नादापूरित - दिङ्मुखा ॥५६१॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥५६२॥

विचित्र - खट्वाङ्गधरा नरमाला - विभूषणा ।
द्वीपिचर्म - परीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥५६३॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५६४॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्याः ललाट - फलकाद् द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५६५॥

नमस्तस्यै ॥५६६॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनमसीवर्णमभूत्तदा ॥५६७॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥५६८॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।

आकृष्ट - चापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥५६९॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥५७०॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।

सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥५७१॥

नमस्तस्यै ॥५७२॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्ड-मुण्ड-पुरोगमाः।

चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥५७३॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥५७४॥

ऋषिरुवाच ॥५७५॥

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥५७६॥

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।

शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥५७७॥
नमस्तस्यै ॥५७८॥

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदा शेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥५७९॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥५८०॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥५८१॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥५८२॥

चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्ड-मुण्डौ महासुरौ ॥५८३॥
नमस्तस्यै ॥५८४॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवी केसरिणा ततः ॥५८५॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥५८६॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥५८७॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५८८॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥५८९॥
नमस्तस्यै ॥५९०॥
केषाञ्चित् पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥५९१॥
नमतस्यै नमो नमः ॥५९२॥

काश्चित करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥५९३॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५९४॥
ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपाताऽसुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥५९५॥
नमस्तस्यै ॥५९६॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥५९७॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥५९८॥
इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुङ्कारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥५९९॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६००॥

ऋषिरुवाच ॥ ६०१ ॥

नमस्तस्यै ॥६०२॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलतसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥६०३॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६०४॥

देव्युवाच ॥६०५॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६०६॥

न चेत् प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥६०७॥

नमस्तस्यै ॥६०८॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भ - निशुम्भयोः ॥६०९॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६१०॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥६११॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६१२॥

ऋषिरुवाच ॥६१३॥

नमस्तस्यै ॥६१४॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वाऽपि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥६१५॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६१६॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥६१७॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६१८॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥६१९॥
नमस्तस्यै ॥६२०॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥६२१॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६२२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६२३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६२४॥
स त्वं गच्छ मयोक्त ते यदेतत् सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वाऽसुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥६२५॥
नमस्तस्यै ॥६२६॥

एवमेतद्-बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।

किं करोमि प्रतिज्ञां मे यदनालोचिता पुरा ॥६२७॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६२८॥

देव्युवाच ॥६२९॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६३०॥

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भ-निशम्भयोः ।

केशाकर्षण-निर्धूत-गौरवा मा गमिष्यसि ॥६३१॥

नमस्तस्यै ॥६३२॥

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।

शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥६३३॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६३४॥

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।

तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि ! किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥६३५॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६३६॥

अवलिप्ताऽसि मैवं त्व देवि ! ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भ-निशुम्भयोः ॥६३७॥
नमस्तस्यै ॥६३८॥

दूत उवाच ॥ ६३९ ॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६४०॥

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥६४१॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६४२॥

यो मां जयति सङ्ग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥६४३॥
नमस्तस्यै ॥६४४॥

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत् क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥६४५॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६४६॥
सत्यमुक्तं त्वया नाऽत्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥६४७॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६४८॥
देव्युवाच ॥६४९॥

नमस्तस्यै ॥६५०॥
इत्युक्त्वा सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥६५१॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६५२॥

ऋषिरुवाच ॥६५३॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६५४॥

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् - बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥६५५॥
नमस्तस्यै ॥६५६॥

मां वा ममानुजं वाऽपि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥६५७॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६५८॥

स्त्री रत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥६५९॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६६०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषुरगेषु च ।

रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥६६१॥
नमस्तस्यै ॥६६२॥

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैः श्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥६६३॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६६४॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥६६५॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६६६॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥६६७॥
नमस्तस्यै ॥६६८॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।

निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥६६९॥

नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७०॥

देवी दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।

दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥६७१॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।

भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥६७२॥

दूत उवाच ॥६७३॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्-व्याप्य स्थिता जगत् ।

नमस्तस्यै ॥६७४॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।

सा देवी तान् ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥६७५॥

नमस्तस्यै ॥६७६॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान् मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥६७७॥
नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७८॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्ड-मुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥६७९॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्, तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी, शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥६८०॥

ऋषिरुवाच ॥६८१॥

या साम्प्रतं चोद्धत - दैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्ति - विनम्र - मूर्तिभिः ॥६८२॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥६८३॥

ऋषिरुवाच ॥६८४॥

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥६८५॥
एवं स्तवादि-युक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्या ययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥६८६॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥६८७॥
साऽब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ॥६८८॥

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनश्रावि तिष्ठति ।
तथाऽयं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत् प्रजापतेः ॥६८९॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्य-निराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥६९०॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥६९१॥
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥६९२॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदाऽऽसीद् वेधसोऽद्भुतम् ॥६९३॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत् साऽपि पार्वती ।

कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥६१४॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥६१५॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरा ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यो शुम्भ-निशुम्भयोः ॥६१६॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥६१७॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥६१८॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥६१९॥

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥७००॥

मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येऽध्यायदेवतायै नमो नमः ।

तत अङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानपूर्वकं देवीसूक्तं पठेत् । तथाऽष्टोत्तरशतं नवार्णमन्त्रं जपित्वा, रहस्यत्रयं च पठेत् ।

पाठ करनेके बाद अङ्गन्यास कर ध्यान पूर्वक देवी सूक्त का पाठ करे । एवं एक माला नवार्ण मन्त्र का जप कर रहस्य-त्रय का भी पाठ करे ।

मं. प्र. १११

उ. न्या १११
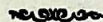
उत्तरन्यासः

हृदयादिन्यासः—खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ॥ हृदयाय नमः ।
शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चाप-ज्या-निःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ।
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ! ॥ शिखायै वषट् ।
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चाऽत्यर्थ-घोराणि तै रक्षाऽस्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम् ।
खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् ।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट् ।

इत्युत्तरन्यासः ।

ध्यानम्—

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपति-स्कन्ध-स्थितां भीषणां
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥ १ ॥

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु कुलिशं पङ्कं धनुःकुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभ-मर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥

मं. प्र.   दे. सू.

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥
अतिसौम्याति-रौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाऽखिलेषु या। भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

प. ११४
दे. सू. ११४

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्ट-संश्रयात् तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥
या साम्प्रतं चोद्धत-दैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः ॥

इति देवीसूक्तं समाप्तम् ।

ततो देवीसूक्तस्य पाठं कृत्वाऽष्टोत्तरशतसङ्ख्याकं 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति नवार्णमन्त्रं जपेत् । तत्पश्चात्—

गुह्याऽतिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ॥

इति पठित्वा, देव्या वामहस्ते जपं निवेदयेत् । ततः सप्तशती-रहस्यत्रयं पठेत् ।

प्राधानिकं रहस्यम्

विनियोगः—अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकाली-महासरस्वत्यो देवताः, यथोक्तफलाऽवाप्त्यर्थं जपे विनोयोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः । एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् ! प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥

आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज ! । विधिना ब्रूहि सकलं यथावत् प्रणतस्य मे ॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते । भक्तोऽसीति न मे किञ्चित् तवाऽवाच्यं नराधिप ! ॥

सर्वस्याऽऽद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी । लक्ष्याऽलक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती । नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप ! मूर्द्धनि ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा । शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥

शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी । बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥

सा भिन्नाऽञ्जनसङ्काशा दंष्ट्राङ्कितवरानना । विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥

खड्गपात्र-शिरःखेटैरलङ्कृत-चतुर्भुजा । कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा । नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥

तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् । ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥

महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा । निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥

इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः । एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम्

तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ! । सत्त्वाख्येनाऽतिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥

अक्षमाला-ङ्कुशधरा वीणा-पुस्तकधारिणी । सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥

महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती । आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् । युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् । हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥
ब्रह्मन् विधे ! विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् । श्री पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह । एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् । जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥
स रुद्रः शङ्करः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः । त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप ! । जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः । उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे । चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप ! त्रयीम् । रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥
स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् । बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ! । महाभूतात्मकं सर्वं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ॥
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः । संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥

महालक्ष्मीर्महाराज ! सर्वसत्त्वमयीश्वरी । निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नाऽन्येन केनचित् ॥

इति प्राधानिकं रहस्यं समाप्तम् ।

❀

वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता । सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा । मधु-कैटभनाशार्थं यां तुष्टावाऽम्बुजासनः ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा । विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपाऽपि भूमिप ! । रूप-सौभाग्य-कान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥
खड्ग-बाण-गदा शूल चक्र-शङ्ख-भुशुण्डिभृत् । परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया । आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराऽचरम् ॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा । त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला । रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥

सुचित्रजघना चित्र-माल्याम्बर-विभूषणा । चित्रानुलेपना कान्ति-रूप-सौभाग्यशालिनी ॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती । आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा । चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः । अलङ्कृत-भुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ! । पूजयेत् सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥
गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया । साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता शुम्भाऽसुरनिर्बर्हिणी ॥
दधौ चाऽष्टभुजा बाण-मुसले शूल-चक्रभृत् । शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ! ॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति । निशुम्भमथिनी देवी शुम्भाऽसुरनिबर्हिणी ॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ! । उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती । दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे । वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चाऽस्या दशानना । दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ! । दशानना चाऽष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥
काल-मृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वाऽरिष्टप्रशान्तये । यदा चाऽष्टभुजा पूज्या शुम्भाऽसुरनिबर्हिणी ॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्र-विनायकौ । नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती । ईश्वरी पुण्य-पापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः । पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥
अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्ध-पुष्पैस्तथाऽक्षतैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नाना-भक्ष्य-समन्वितैः ॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ! । (बलि-मांसादि-पूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप ! क्वचित् ।) प्रणामा-ऽचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥
स-कर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्ति-भाव-समन्वितैः । वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया । दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥
वाहनं पूजयेद् देव्या धृतं येन चराऽचरम् । कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः । एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् । प्रदक्षिणा-नमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः । प्रतिश्लोकं च जुहुयात् पायसं तिल-सर्पिषा ॥
जुहुयात् स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः । भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत् सुसमाहितः ॥
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि । सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥
एवं यः पूजयेद् भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् । भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्याऽस्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी॥
तस्मात् पूजय भूपाल! सर्वलोकमहेश्वरीम्। यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम्।

मूर्ति-रहस्यम्

ऋषिरुवाच

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्ति-कनकाम्बरा। देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा॥
कमलाऽङ्कुश-पाशाब्जैरलङ्कृत-चतुर्भुजा। इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्रीरुक्माम्बुजासना॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयाऽनघ!।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम्॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा। रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशाऽतिभीषणा॥
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका। पतिं नारीवाऽनुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम्॥

वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी । दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी । भक्तान् सम्पाययेद् देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥

खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ।
इमां यः पूजयेद् भक्त्या स व्याप्नोति चराऽचरम् ॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्)
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।
तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना । गम्भीर-नाभिस्त्रीवली-विभूषित-तनूदरी ॥
सुकर्कश-तमोत्तुङ्ग - वृत्त- पीन - घनस्तनी । मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥
पुष्प-पल्लव-मूलादि-फलाढ्यं शाकसञ्चयम् । काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥
कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी । शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदा । उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायन् जपन् सम्पूजयन् नमन् । अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥

भीमाऽपि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा । विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥

चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती ।

एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् । चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते । इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः । इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित् त्वया ॥
व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि । पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि । सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ॥

अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥)

इति मूर्ति-रहस्यं सम्पूर्णम् ।

म.　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　क्ष.

प्र.　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　प्रा.

क्षमा-प्रार्थना

यदत्र पाठे जगदम्बिके ! मया, विसर्ग-बिन्द्वक्षर-हीनमीरितम् ।
तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः, सङ्कल्पसिद्धिश्च सदैव जायताम् ॥
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठित, साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन् ।
तत्सर्वं साङ्गमास्तां भगवति वरदे !, त्वत्प्रसादात् प्रसीद ! ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ! । यत्पूजितं मया देवि ! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् । यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ! । इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥
कामेश्वरि ! जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे । गृहाणाऽर्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ! ॥

श्रीदुर्गार्पणमस्तु ।

हवन-समये कवचाहुति-निषेधः

दुर्गोपासना-कल्पद्रुमप्रमाणेन सप्तशतीस्थ-कवच-पञ्चदश-मन्त्राणां हवनो निषिद्धः। १६०संख्याक-मन्त्रोत्तरार्द्धस्य तथा १९२, १६४, १६६, १६८, १७०, १६५, १६६, १९७, १९९, २०१, २०३, ४८२, ४८४, ४८६, ४८८संख्याक-मन्त्राणां पूर्वार्द्धस्य च हवनं न कार्यम्।

मन्त्र-प्रतिलोम-दुर्गा-हवन-प्रयोगः

ततः पाठसमाप्तौ कृतायां पाठदशांशं हवनं तद्दशांशतर्पणं तद्दशांशमार्जनं मार्जनदशांशं ब्राह्मणभोजनं च कुर्यात्। तद्यथा—

कवचाहुतिनिषेध–दुर्गोपासना-कल्पद्रुमके प्रमाणानुसार मन्त्र प्रतिलोम दुर्गासप्तशती स्थित कवचके पन्द्रह मन्त्रों का हवन एवं १६० संख्या वाले मन्त्रोंके उत्तरार्द्ध का हवन तथा १९२, १६४, १६६, १६६, १७०, १९५, १९६·१९७ १९९ और २०१ २०३, ४८२, ४८४, ४८६, ४८८ संख्या वाले मन्त्रों के पूर्वार्द्ध भाग का हवन निषिद्ध है।

दुर्गाहवन प्रयोग लोम-प्रतिलोम दुर्गासप्तशती के शत अथवा हजार पाठ होने के बाद पाठ-दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण; तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन करावे। वह इस प्रकार है—

यजमानः आचम्य, प्राणानायम्य । 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा०' इति आत्मानं हवन-पूजन-सामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य । हस्तेऽक्षत-पुष्पाणि गृहीत्वा, 'आ नो भद्राः०'—'सुमुखश्चैकदन्तश्च०' इत्यादिमङ्गलमन्त्रान् पठेत् ।

ततो हस्ते जला-ऽक्षत-पुष्प-द्रव्याण्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात् । तद्यथा—देशकालौ सङ्कीर्त्य, अमुकगोत्रः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्याऽऽयुरारोग्य-विपुल-पुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्न-सन्ततिवृद्धि-स्थिरलक्ष्मी- कीर्तिलाभ- शत्रुपराजय-सदभीष्ट-सिद्ध्यर्थं श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थं कृतस्य मन्त्र-प्रतिलोम-दुर्गा-सप्तशती—पाठसाङ्गतासिद्ध्यर्थं तद्दशांश-हवन-तद्दशांशतर्पण-तद्दशांश-मार्जन-तद्दशांशब्राह्मणभोजनं च करिष्ये । तदङ्गत्वेन स्वस्ति-पुण्याहवाचनं मातृका-

---

यजमान पूर्वाभिमुख हो आचमन, प्राणायाम कर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा०' इस श्लोक से अपने ऊपर और हवन-पूजन सामग्री का प्रोक्षण कर, हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर 'आ नो भद्रा०' आदि मङ्गल मन्त्र तथा 'सुमुखश्चैकदन्तश्च०' इत्यादि मांगलिक श्लोकों का पाठ करे ।

उसके बाद यजमान दाहिने हाथमें जल, अक्षत, पुष्प एवं द्रव्य लेकर 'देशकालौ सङ्कीर्त्य०' से 'तद्दशांश-ब्राह्मणभोजनं च करिष्ये' पर्यन्त संकल्प-वाक्य पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे । पुनः

पूजनं वसोर्द्धारापूजनमायुष्यमन्त्रजपमाचार्यादि-वरणानि च करिष्ये । तत्राऽऽदौ निर्विघ्नता-सिद्ध्यर्थं गणेशाऽम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये ।

तदनन्तरं गणेशपूजनादारभ्य पूर्णाहुतिपर्यन्तं सर्वं कार्यं मत्प्रणीत-'दुर्गार्चन-पद्धत्य'नुसारेण कुर्यात् । प्रधानहवने तु सप्तशतीप्रतिश्लोके स्वाहान्तहोमः, चर्वाज्य-द्रव्येण कुर्यादिति विशेषः । तर्पणे—'दुर्गां तर्पयामि ।' मार्जने—'दुर्गां मार्जयामि ।'

इति मन्त्र-प्रतिलोम दुर्गाहवन-प्रयोगः समाप्तः

हाथ में जल लेकर 'तदङ्गत्वेन स्वस्ति-पुण्याहवाचनं०' से 'आचर्यादि-वरणानि च करिष्ये' पर्यन्त पढ़कर भूमि पर जल छोड़ दे । पुनः हाथ में जल लेकर 'तत्राऽऽदौ०' से 'पूजनमहं करिष्ये' तक पढ़कर जल छोड़ दे ।

तत्पश्चात् गणेश-पूजन से लेकर पूर्णाहुति पर्यन्त सभी कार्य मेरे द्वारा रचित 'दुर्गार्चन पद्धति' के अनुसार करे । दुर्गा के प्रधान हवनमें तो मन्त्र-प्रतिलोम दुर्गासप्तशतीस्थ प्रतिश्लोक के अन्त में स्वाहा कहकर घृत मिश्रित चरु से हवन करे । तर्पण में 'दुं दुर्गां तर्पयामि' एवं मार्जन में 'दुं दुर्गां मार्जयामि' कहकर कुशा द्वारा जल से तर्पण एवं मार्जन करे ।

इस प्रकार मन्त्रप्रतिलोम दुर्गा-हवन प्रयोग समाप्त ।

॥ ॐ अपराजितायै नमः ॥

अपराजिता-विद्या-प्रयोगः

प्रथम-प्रयोगः

अपराजिता-महामन्त्रः

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कलिकुण्ड-स्वामिनि अप्रतिचक्रे जये विजये अपराजिते अमुकं जृम्भय मोहय स्वाहा। इति पञ्चत्रिंशाक्षरी मोहिनीविद्या।

न ध्यानं न जपश्चाऽस्याः सिद्धिविद्या महामनोः।
स्मरणादेव सर्वेषां सर्वसिद्धप्रदा सदा ॥ १ ॥
राजसद्मनि सङ्ग्रामे सभायां प्राणसङ्कटे।
द्यूते विद्या - प्रयोगे च जयलक्ष्मीप्रदो मनुः ॥ २ ॥

अपराजिता विद्या प्रयोग—

प्रथम प्रयोग—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं' से 'जृम्भय मोहय स्वाहा' पर्यन्त पैंतिस वर्णवाली मोहिनी नाम की अपराजिता विद्या है।

इस अपराजिता विद्या मन्त्र को इक्कीस बार जप करने से तथा 'न ध्यानं' से 'तस्य वश्यं

एकविंशतिवारान् यो जपं कुर्यात् विचक्षणः ।
मन्त्रस्य सर्वकार्येषु तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ॥ ३ ॥

द्वितीयप्रयोगः

ॐ अस्या वैष्णव्या परायां अजिताया महाविद्याया वामदेव-बृहस्पति-मार्कण्डेय ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-बृहती-छन्दांसि, श्रीलक्ष्मीनृसिंहो देवता, ॐ क्लीं-श्रीं-ह्रीं-बीजानि, हुंशक्तिः, सकलकामनासिद्ध्यर्थम् अपराजिताविद्यामन्त्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ नीलोत्पल-दलश्यामां भुजङ्गाभरणान्विताम् ।
शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां चन्द्रकोटि-निभाननाम् ॥ १ ॥

जगत्त्रयम्' पर्यन्त तीन श्लोक के पाठ मात्र से ही साधक जिसे चाहे उसे अपने वश में कर सकता है ॥ १–३ ॥

द्वितीय प्रयोग हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्या वैष्णव्या' से 'मन्त्रपाठे विनियोगः' पर्यन्त कहकर भूमि पर जल छोड़ दे ।

ध्यान— नील कमलदल के समान श्याम वर्णवाली, सर्पके आभूषणों से युक्त, शुद्ध स्फटिक

शङ्ख-चक्र-धरां देवीं वैष्णवीमपराजिताम् ।
बालेन्दु-शेखरां देवीं वरदाभयदायिनीम् ॥ २ ॥
नमस्कृत्य सपाठेन मार्कण्डेयो महातपाः ॥२½॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सर्वकामार्थसिद्धदाम् ॥ ३ ॥
असिद्धसाधिनीं देवीं वैष्णवीमपराजिताम् ।

ॐ नमो नारायणाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमोऽनन्ताय सहस्रशीर्षाय क्षीरोदार्णवशायिने शेषभोगपर्यङ्काय, गरुडवाहनाय, अमोघाय, अजाय, अजिताय पीतवाससे ॐ वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, हयग्रीव, मत्स्य-कूर्म-

---

एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान मुखवाली, शंख चक्र धारिणी, बालचन्द्र युक्त भाल स्थलवाली, अभय वर प्रदायिका, अपराजिता वैष्णवी देवी को महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि नमस्कार कर अपराजिता वैष्णवी देवी के मन्त्र का निरूपण सभी ऋषियों के समक्ष कर रहे हैं ॥ –२½ ॥

सभी कामनाओं को सिद्ध करने वाली, अकार्य-कार्य साधिका वैष्णवी देवी के मन्त्र का आप सभी ऋषिगण एकाग्र चित्त से श्रवण करें ॥ ३–३½ ॥

वाराह-नृसिंह-अच्युत-वामन-त्रिविक्रम-श्रीधर-राम राम राम। वरद-वरद वरदो भव नमोऽस्तु ते, नमोऽस्तु ते, नमोऽस्तु ते स्वाहा ॥ १ ॥

ॐ असुर - दैत्य - दानव-यक्ष-राक्षस-भूत - प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड-सिद्ध-योगिनी-डाकिनी-शाकिनी-स्कन्दग्रहान् उपग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चाऽन्यान् हन-हन-पच-पच-मथ-मथ-विध्वंसय-विध्वंसय विद्रावय-विद्रावय चूर्णय - चूर्णय शङ्खेन चक्रेण वज्रेण शूलेन गदया मुसलेन हलेन भस्मी कुरु कुरु स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ सहस्रबाहो सहस्रप्रहरणायुध, जय जय, विजय विजय, अजित-अमित-अपराजित-अप्रतिहत-सहस्रनेत्र-ज्वल-ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, विश्वरूप बहुरूप-मधुसूदन, महावराह-महापुरुष-वैकुण्ठ नारायण, पद्मनाभ-गोविन्द-दामोदर-हृषिकेश-केशव-सर्वा-सुरोत्सादन-सर्वभूत-वशङ्कर सर्वदुःस्वप्नप्रभेदन, सर्वयन्त्र प्रभञ्जन, सर्वनाग निमर्दन सर्वदेवमहेश्वर-सर्वबन्धन-विमोक्षण सर्वाहित-प्रमर्दन-सर्वज्वरप्रणाशन सर्वग्रह - निवारण, सर्वपाप-प्रशमन जनार्दन, नमोऽस्तु ते स्वाहा ॥ ३ ॥

'ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय' मन्त्र एक से 'जनार्दन, नमोऽस्तु ते' मन्त्र तीन तक मार्कण्डेय मुनि ने कहा ॥ १-३ ॥

मं. प्र. १६१ — अ. प्र. १३१

अस्य माहात्म्यम्

विष्णोरियं मनुप्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ।
सर्वसौभाग्यजननी सर्व-भीति-विनाशिनी ॥ १ ॥

सर्वैश्च पठिता सिद्धैर्विष्णोः परमवल्लभा ।
नाऽनया सदृशं किञ्चिद् दुष्टानां नाशनं परम् ॥ २ ॥

विद्या रहस्या कथिता वैष्णव्येषाऽपराजिता ।
पठनीया प्रशस्ता वा साक्षात् सत्त्वगुणाश्रया ॥ ३ ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ४ ॥

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यभयामपराजिताम् ।
या शक्तिर्मामकी वत्स ! रजोगुणमयी मता ॥ ५ ॥

मन्त्र-फल— वैष्णवी अपराजिता विद्या मन्त्र का फल 'विष्णोरियं मनुप्रोक्ता' से 'सर्वविघ्नोपशान्तये' पर्यन्त चार श्लोकों में वर्णन किया ॥ १–४ ॥

सर्वसत्त्वमयी साक्षात् सर्वमन्त्रमयी च या ।
या स्मृता पूजिता जप्ता न्यस्ता कर्मणि योजिता ॥ ६ ॥
सर्वकामदुघा वत्स ! शृणुष्वैतां ब्रवीमि ते ।

य इमामपराजितां परमवैष्णवीमप्रतिहतां पठति, सिद्धां स्मरति, सिद्धां महाविद्यां जपति पठति शृणोति, स्मरति, धारयति, कीर्तयति वा, न तस्याऽग्नि-वायु-वज्रोपलाऽशनिवर्षभयं न समुद्रभयं, न ग्रहभयं, न चौरभयं, न शत्रुभयं न श्वापदभयं वा भवेत् । क्वचिद्रात्र्यन्धकार-स्त्री-राजकुल-विद्वेषि-विषोपविषगर गरद शीकरण, विद्वेषणोच्चाटन, वध-बन्धनभयं वा न भवेत् ।

तत्पश्चात् 'अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि' से 'ब्रवीमि ते' पर्यन्त तीन श्लोकों में अभया अपराजिता विद्या का वर्णन किया ॥ १-३ ॥

फलश्रुति—जो इस वैष्णवी एवं अभया अपराजिता मन्त्रका नित्य पाठ करता है, सिद्ध मन्त्रों का स्मरण करता है, और महाविद्या का जप, पठन, श्रवण, स्मरण, धारण और कीर्तन करता है उसे अग्नि, वायु, वज्र, ओला, बिजली, वर्षा, समुद्र, ग्रह, चोर, शत्रु, पशु आदि का भय व्याप्त नहीं होता। उसे कभी भी घोर रात्रि का अन्धकार, स्त्री, राजकुल, शत्रु, विष, उपविष, वशी करण, विद्वेषण, उच्चाटन-वध (फाँसी) और बन्धन भय नहीं होता है ॥

तृतीयप्रयोगः

एतैर्मन्त्रैरुदाहृतैः सिद्धैः संसिद्धपूजितैः ।

ॐ नमोऽस्तु ते, अभये, अनघे, अजिते, अमिते, अमृते, अपरे, अपराजिते, पठितसिद्धे, जपितसिद्धे, स्मरितसिद्धे, एकोनाशीतितमे एकाकिनि, निश्चेतसि, सुद्रुमे, सुगन्धे, एकान्नरे, उमे, ध्रुवे, अरुन्धति, गायत्रि, सावित्रि, जातवेदसि, मानस्तोके, सरस्वति, धरणि धारिणि, सौदामनि, अदिति, दिति, विनते, गौरि, गान्धारि, मातङ्गि, कृष्ण-यशोदे, सत्यवादिनि, ब्रह्मवादिनि, कालि कपालिनि, करालनेत्रे, भद्रे, निद्रे, सत्योपयाचनकरि, स्थलगतं, जलगतं, अन्तरिक्षगतं वा मां रक्ष रक्ष सर्वभूतभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा ।

अस्य माहात्म्यम्

यस्याः प्रणश्यते पुष्पं गर्भो वा पतते यदि ।
म्रियते बालको यस्याः काकवन्ध्या च या भवेत् ॥ १ ॥

तृतीय प्रयोग—अधोलिखित मन्त्र अत्यन्त सिद्ध एवं सिद्धों द्वारा माननीय है । 'ॐ नमोऽस्तु ते' से 'सर्वभूतभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा' तक मन्त्र है ।

धारयेद्या इमां विद्यामेतैर्दोषैर्न लिप्यते ।
गर्भिणी जीववत्सा स्यात् पुत्रिणी स्यान्न संशयः ॥ २ ॥
भूर्जपत्रे त्विमां विद्यां लिखित्वा गन्ध-चन्दनैः ।
एतैर्दोषैर्न लिप्येत सुभगा पुत्रिणी भवेत् ॥ ३ ॥
रणे राजकुले द्यूते नित्यं तस्य जयो भवेत् ।
शस्त्रं वारयते ह्येषां समरे काण्डदारुणं ॥ ४ ॥
गुल्म-शूलादि-रोगाणां क्षिप्रं नाशयति व्यथाम् ।
शिरोरोग-ज्वराणां च नाशिनी सर्वदेहिनाम् ॥
इत्येषा कथिता विद्या अभयाख्याऽपराजिता ॥ ५ ॥
एतस्याः स्मृतिमात्रेण भयं क्वाऽपि न जायते ।
नोपसर्गा न रोगाश्च न योधा नाऽपि तस्कराः ॥ ६ ॥
न राजानो न सर्पाश्च न द्वेष्टारो न शत्रवः ।
यक्ष-राक्षस-वेताला न शाकिन्यो न च ग्रहाः ॥ ७ ॥
अग्नेर्भयं न वाताच्च न समुद्रान्न वै विषात् ।

कार्मणं वा शत्रुकृतं वशीकरणमेव च ॥ ८ ॥
उच्चाटनं स्तम्भनं च विद्वेषणमथापि वा ।
न किञ्चित् प्रभवेत् तत्र यत्रैषा वर्ततेऽभया ॥ ९ ॥
पठेत् वा यदि वा चित्रे पुस्तके वा मुखेऽथवा ।
हृदि वा द्वारदेशे वा वर्त्तते ह्यभयः पुमान् ॥१०॥
हृदये विन्यसेदेतां ध्यायेद् देवीं चतुर्भुजाम् ।
रक्तमाल्याम्बरधरां पद्मरागसमप्रभाम् ॥११॥
पाशा - ऽङ्कुशाऽभय - वरैरलङ्कृत - सुविग्रहाम् ।
साधकेभ्यः प्रयच्छन्तीं मन्त्रवर्णामृतान्यपि ॥१२॥
नाऽतः परतरं किञ्चिद् वशीकरणमुत्तमम् ।
रक्षणं पावनं चापि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१३॥
प्रातः कुमारिकाः पूज्याः खाद्यैराभरणैरपि ।
तदिदं वाचनीयं स्यात् तत्प्रीत्या प्रीयते तु माम् ॥१४॥
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि विद्यामपि महाबलाम् ।

सर्वदुष्टप्रशमनीं सर्वशत्रुक्षयङ्करीम् ॥१५॥
दारिद्र्य-दुःखशमनीं दौर्भाग्य-व्याधिनाशिनीम् ।
भूत-प्रेत-पिशाचानां यक्ष-गन्धर्व-रक्षसाम् ॥१६॥
डाकिनी-शाकिनी-स्कन्द-कूष्माण्डानां च नाशिनीम् ।
महारौद्रीं महाशक्तिं सद्यः प्रत्ययकारिणीम् ॥१७॥
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वस्वं पार्वतीपतेः ।
तामहं ते प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥१८॥
एकाह्निकं द्व्यह्निकं वा चातुर्थिकार्द्धमासिकम् ।
द्वैमासिकं त्रैमासिकं तथा चातुर्मासिकम् ॥१९॥
पञ्चमासिकं षाण्मासिकं वातिकं पैत्तिकज्वरम् ।
श्लेष्मिकं सान्निपातिकं तथैव सततज्वरम् ॥२०॥
मौहूर्तिकं पैत्तिकं शीतज्वरं विषमज्वरम् ।

मन्त्र मात्म्य—'यस्याः प्रणश्यते पुष्पं' से लेकर 'स्मरणादपराजिता' पर्यन्त एक से साढ़े

द्व्यह्निकं त्र्यह्निकं चैव ज्वरमेकाह्निकं तथा ॥२१॥
क्षिप्रं नाशयते नित्यं स्मरणादपराजिता ॥२१½॥

मन्त्रः

ॐ ह्रीं हन हन, कालि शर-शर, गौरि धम-धम, विद्ये आले ताले माले गन्धे बन्धे पच-पच विद्ये नाशय-नाशय पापं हर-हर संहारय संहारय वा दुःस्वप्न-विनाशिनि कमलस्थिते विनायकमातः रजनि सन्ध्ये, दुन्दुभिनादे, मानसवेगे, शङ्खिनि चक्रिणि, गदिनि, वज्रिणि, शूलिनि, अपमृत्यु-विनाशिनि, विश्वेश्वरि, द्रविणि द्रविणि द्राविडि, द्राविणि, केशवदयिते, पशुपतिसहिते, दुन्दुभिदमनि, दुर्मददमिनि, शबरि किराति मातङ्गि ॐ द्रुं द्रुं ज्रुं ज्रुं क्रुं क्रुं तुरु तुरु ॐ द्रुं कुरु कुरु ॥ १ ॥

ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं वा तान् सर्वान् दम दम मर्दय मर्दय तापय तापय गोपय गोपय पातय पातय शोषय शोषय उत्सादय उत्सादय ब्रह्माणि वैष्णवि माहेश्वरि कौमारि वाराहि नारसिंहि ऐन्द्रि चामुण्डे महालक्ष्मि वैनायकि औपेन्द्रि

इक्कीस श्लोकों में मन्त्र का माहात्म्य वर्णन किया गया है। इन श्लोकों के अर्थ स्पष्ट हैं ॥१-२१½॥

आग्नेयि चण्डि चामुण्डे वारुणि वायव्ये नैर्ऋति सौम्ये ऐशानि ऊर्ध्वमधो रक्ष प्रचण्डविद्ये इन्द्रोपेन्द्रभगिनी ॥ २ ॥

ॐ नमो देवि, जये विजये शान्ति-स्वस्ति-तुष्टि-पुष्टि-विवर्द्धिनि ।

कामाङ्कुशे कामदुघे सर्वकामवरप्रदे । सर्वभूतेषु मां प्रियं कुरु कुरु स्वाहा । आकर्षणि आवेशनि ज्वालामालिनि रमणि रामणि धरणि धारणि, तपनि तापिनि मदनि मादिनि, शोषणि संमोहनि नीलपताके महानीले महागौरि महाश्रिये ॥ ३ ॥

महाचान्द्रि महासौरि महामायूरि आदित्यरश्मि जाह्नवि ! यमघण्टे किणि किणि चिन्तामणि । सुगन्धे सुरभे सुराऽसुरोत्पन्ने सर्वकामदुघे यद्यथा मनीषितं कार्यं तन्मम सिद्ध्यतु स्वाहा । ॐ स्वाहा । ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ महः स्वाहा । ॐ जनः स्वाहा । ॐ तपः स्वाहा । ॐ सत्यं स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । यत एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु स्वाहेत्योम् ॥ ४ ॥

मन्त्र—'ॐ ह्रीं हन हन' से 'प्रतिगच्छतु स्वाहेत्योम्' पर्यन्त चार महाबला अपराजिता विद्या मन्त्र है ॥ १-४ ॥

अ. प्र. १३९

अमोघैषा महाविद्या वैष्णवी चापराजिता ।
स्वयं विष्णुप्रणीता च सिद्धेयं पाठतः सदा ॥ १ ॥
एषा महाबला नाम कथिता तेऽपराजिता ।
नाऽनया सदृशी रक्षा त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥
तमोगुणमयी साक्षाद्रौद्री शक्तिरियं मता ।
कृतान्तोऽपि यतो भीतः पादमूले व्यवस्थितः ।
मूलाधारे न्यसेदेतां रात्रावेनां च संस्मरेत् ॥ ३ ॥

महाबला-अपराजिता-ध्यानम्

नील-जीमूत-सङ्काशां तडिन्-कपिल-केशिकाम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशां नेत्रत्रयविराजिताम् ॥ ४ ॥

यह वैष्णवी अपराजिता महाविद्या का प्रयोग पूर्ण सफल है। क्योंकि स्वयं भगवान् विष्णु द्वारा प्रणीत है। यही महाबला अपराजिता नाम से कही गयी है। तीनों लोकों में इस विद्या के समान रक्षा करने वाली और कोई भी मन्त्र विद्या नहीं है। यह तमोगुणमयी रौद्री शक्ति है। जिसके भय से भयभीत होकर यम राज भी इस महाबला अपराजिता विद्या के चरणों में लोटता है। मूलाधार में इसे स्थित करे और मध्य रात्रि मे इसका स्मरण करे ॥ १-३ ॥

अ. प्र. १४०

शक्तिं त्रिशूलं खड्ग-शङ्खं च पानपात्रं च बिभ्रतीम् ॥ ५ ॥
व्याघ्रचर्म-परीधानां किङ्किणीजालमण्डिताम् ।
धावन्तीं गगनस्याऽन्तः पादुकाहितपादकाम् ॥ ६ ॥
दंष्ट्राकरालवदनां व्याल-कुण्डल-भूषिताम् ।
व्यात्तवक्त्रां ललज्जिह्वां भृकुटीकुटिलालकाम् ॥ ७ ॥
स्वभक्तद्वेषिणां रक्तं पिबन्तीं पानपात्रतः ।
सप्तधातून् शोषयन्तीं क्रूरदृष्ट्या विलोकनात् ॥ ८ ॥
त्रिशूलेन च तज्जिह्वां कीलयन्तीं मुहुर्मुहुः ।
पाशेन बद्ध्वा तं साध्यमानयन्तीं तदन्तिके ॥ ९ ॥
अर्द्धरात्रस्य समये देवीं ध्यायेन्महाबलाम् ।

महाबला---अपराजिता का ध्यान-कृष्ण मेघके समान पीली, विद्युत् के सदृश केशवाली, उदीय मान सूर्य के सदृश, तीन नेत्र वाली; शक्ति, त्रिशूल, शंख, मदिरा पान पात्र धारण की हुई, व्याघ्रचर्म धारिणी, पैरों में नूपुर (पैंजेब) धारण की हुई, एक पैर आकाश की ओर उठाई हुई, भयंकर दाँतों से विकराल मुखवाली, सर्प कुण्डल से विभूषित, मुंह फैलाये लपलपाती जीभ वाली, अपने भक्तों के शत्रुओं का रक्त पान पात्र में भरकर पीने वाली, अपनी क्रूर दृष्टि द्वारा देखने

यस्य यस्य वदन्नाम जपेन्मन्त्रं निशान्तके ॥
तस्य तस्य तथाऽवस्थां कुरुते साऽपि योगिनी ॥१०॥
ॐ बले महाबले असिद्धसाधनी स्वाहेत्योम् ।
अमोघां पठितसिद्धां श्रीवैष्णवीं श्रीमदपराजितविद्यां ध्यायेत् ॥

फलश्रुतिः

दुःस्वप्ने दुररिष्टे च दुर्निमित्ते तथैव च ।
व्यवहारे भवेत् सिद्धिः पठेद् विघ्नोपशान्तये ॥११॥

से सातों धातुओं का शोषण करती हुई तथा बारंबार त्रिशूल से उनकी जिह्वा कीलन करती हुई, पाश द्वारा बाँधकर साधक के शत्रुओं को उनके पास लाती हुई, अर्धरात्रि के समय महाबला अपराजिता देवी का ध्यान करे। साधक अपने जिन-जिन शत्रुओं का नाम लेकर मध्यरात्रि में जप करे तो उन-उन शत्रुओं को महाबला अपराजिता योगिनी साधक के अनुकूल कर देती है ॥ ४–१० ॥

मन्त्र—'ॐ बले महाबले' से 'स्वाहेत्योम्' पर्यन्त अपराजिता वैष्णवी सफल सिद्धविद्या का ध्यान करे।

फलश्रुति - दुःस्वप्न, अरिष्ट तथा दुर्निमित्त होने पर और समस्त विघ्नोके शान्ति निमित्त व्यवहार में सिद्धि प्राप्त करने के लिए इस अपराजिता विद्या का पाठ करे ॥ ११ ॥

क्षमा-प्रार्थना

यदत्र पाठे जगदम्बिके मया, विसर्ग-बिन्द्वक्षर-हीनमीरितम् ।
तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रयान्तु मे, सङ्कल्पसिद्धिस्तु सदैव जायताम् ॥ १ ॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशासि महेश्वरि ! ।
यादृशासि महादेवि ! तादृशायै नमो नमः ॥ २ ॥

इत्यपराजिता-विद्या समाप्ता ।

क्षमा-प्रार्थना—'यदत्र पाठे' से लेकर 'तादृशायै नमो नमः' तक दो श्लोक पढ़कर क्षमा-प्रार्थना करे ।

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित अपराजिता विद्या प्रयोग समाप्त ।

❀

दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाम-माला

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद् विनिवारिणी । दुर्गमच्छेदिनी दुर्ग-साधिनी दुर्ग-नाशिनी ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा । दुर्गम-ज्ञानदा दुर्ग-दैत्यलोक-दवानला ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी । दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥
दुर्गम-ज्ञान-संस्थाना दुर्गम-ध्यान-भासिनी । दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी । दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी । नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥
पठेत् सर्वभयान् मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥

इति दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाम-माला समाप्ता ।

❋

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि ! त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाऽप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गा-सप्तश्लोकीस्तोत्र-मन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकी-दुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्य-दुःखभय-हारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकार-करणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥२॥

सर्वमङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते । ३॥

शरणागत-दीनार्त-परित्राण-परायणे ।।
सर्वस्यार्तिहरे देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ! ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ॥५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥६॥

सर्वाबाधा-प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥७॥

इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्ण ।

❀

देव्यपराध-क्षमापन-स्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥१॥

विधेरज्ञानेन द्रविण-विरहेणा-ऽलसतया
विधेयाऽशक्यत्वात् तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता

न वा दत्तं देवि ! द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथाऽपि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४।
परित्यक्ता देवा विविध-विधि-सेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नाऽपि भविता
निरालम्बो लम्बोदर-जननि कं यामि शरणम् ॥५॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटि-कनकैः
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणि-ग्रहण-परिपाटी-फलमिदम् ॥७॥

न मोक्षस्याऽऽकांक्षा भव-विभव-वाञ्छाऽपि च न मे ।
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि-सुखेच्छाऽपि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥
नाऽऽराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्ष-चिन्तन-परैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब ! परं तवैव ॥९॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं, करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः, क्षुधा-तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥
जगदम्ब ! विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि ।
अपराध-परम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि ! यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥
- इति देव्यपराध--क्षमापन-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीदुर्गाष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥१॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी ।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥२॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः ।
मनो-बुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥३॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भाव्याभव्या सदागतिः ॥४॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥५॥
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कमलञ्जीररञ्जिनी ॥६॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी ।

वनदुर्गा च मातङ्गी मातङ्गीमुनिपूजिता ॥७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥८॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥९॥
निशुम्भ-शुम्भ-हननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधु-कैटभहन्त्री च चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी ॥१०॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥११॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥१२॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥१३॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥१४॥

शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥१५॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि ! त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥१६॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
चतुर्वर्णं तथा चाऽन्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥१७॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥१८॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि ! सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥१९॥
गोरोचना-ऽलक्तक-कुङ्कुमेन सिन्दूर-कर्पूर-मधुत्रयेण-
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम् ॥२१॥
इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

दुर्गा आरती

जय अम्बे गौरी, मैया जय श्यामा गौरी।
मैया जय मंगलकरिणी, मैया जय आनन्दकरिणी।
तुमको निशिदिन ध्यावत, हरि ब्रह्मा शिवरी ॥ १ ॥ जय अम्बे०।
माँग सिन्दूर विराजत, टीको मृगमद को।
उज्ज्वल से दोऊ नैना, चन्द्रवदन नीको ॥ २ ॥ जय अम्बे०।
कनक समान कलेवर, रक्ताम्बर राजै।
रक्त पुष्प गल माला, कण्ठन पर साजै ॥ ३ ॥ जय अम्बे०।
केहरि वाहन राजत, खड्ग खप्पर धारी।
सुर नर मुनि जन सेवत, तिनके दुःख हारी ॥ ४ ॥ जय अम्बे०।
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चन्द्र दिवाकर, राजत सम ज्योती ॥ ५ ॥ जय अम्बे०।
शुम्भ-निशुम्भ विदारे, महिषासुर घाती।
धूम्र विलोचन नैना, निशिदिन मदमाती ॥ ६ ॥ जय अम्बे०।

चण्ड-मुण्ड संहारे, शोणित बीज हरे।
मधु-कैटभ दोऊ मारे, सुर भयहीन करे ॥ ७ ॥ जय अम्बे० ।
ब्रह्माणी रुद्राणी, तुम कमला रानी।
अगम निगम बखानी, तुम शिव पटरानी ॥ ८ ॥ जय अम्बे० ।
चौंसठ योगिनि गावत, नृत्य करत भैरों।
बाजत ताल मृदंगा, और बाजे डमरू ॥ ९ ॥ जय अम्बे० ।
तुम ही जग की माता, तुम ही हो भरता।
भक्तन की दुःख हरता, सुख-सम्पति करता ॥१०॥ जय अम्बे० ।
भुजा चार अति शोभित, वरदु अभयधारी।
मन वांछित फल पावत, सेवत नर नारी ॥११॥ जय अम्बे० ।
कंचन थाल विराजत, अगर कपुर बाती।
श्री मालकेतु में राजत, कोटिरत्न ज्योती ॥१२॥ जय अम्बे० ।
ये अम्बे जी की आरति, जो कोई नर गावैं।
कहत शिवानन्द स्वामी, सुख-सम्पति पावैं ॥१३॥ जय अम्बे० ।

आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्री रचित

दुर्गा-चालीसा

दोहा—संकटनाशक विघ्नविनाशक, यह दुर्गा चालीस ।
लहे पदारथ चारि वह, कृपा करहिं जगदीस ॥

जय जय श्री दुर्गा महरानी । जय जय जय अम्बिका भवानी ॥१॥
आद्या शक्ति तुम्हीं हो माता । संहारक पालक अरु त्राता ॥२॥
तुम बहु भाँति लीन्ह अवतारा । करि उपाय शत्रुन संहारा ॥३॥
तुमहीं चामुण्डा ब्रह्माणी । गौरी अन्नपूर्णा कल्याणी ॥४॥
अष्टभुजी भ्रामरी शाकम्भरि । रक्तदन्तिका अरु विन्ध्येश्वरि ॥५॥
ये सब ही हैं तुम्हरो नामा । सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥६॥
अमित नाम तव रूप अपारा । जानत लोक विदित संसारा ॥७॥
कनक वर्ण तन तेज विराजत । शोभा निरखि मदन छबि लाजत॥८॥

संग तुम्हारे सिंह सवारी । दानव दलन दुष्ट भयकारी ॥९॥
कानन कर्णफूल छवि सोहै ।भाल विशाल तिलक मन मोहै ॥१०॥
कण्ठाभरण न जाय बखानी ।नख-शिख शोभा की तुम खानी॥११॥
बाजूबन्द भुजा में छाजत । अरुण चरण में नूपुर बाजत ॥१२॥
कटि किंकिणी कसे तूणीरा । मानहु वेश धरे रणधीरा ॥१३॥
ढाल त्रिशूल खड्ग तुम धारे । भृकुटी कुटिल नयन रतनारे ॥१४॥
चण्ड-मुण्ड महिषासुर मर्दिनि । जगत जननि जगदम्ब कपर्दिनि।१५॥
रक्त बीज दानव भट भारी । किये जतन नहिं मरे सुरारी ॥१६॥
तब तुम रूप कालि को लीन्हा। शोषेउ रुधिर भयउ बलहीना ॥१७॥
वध करि ताहि परमपद दीन्हा । हर्षित सुर नर मुनि सब कीन्हा॥१८॥
शुम्भ निशुम्भ लोक विख्याता । विजयी समरभूमि दोउ भ्राता ॥१९॥
तेहि सन द्वन्द्व युद्ध तुम कीन्हा । मारि त्रिशूल प्राण हर लीन्हा॥२०॥

मधु-कैटभ दानव अति भारी । ब्रह्मा ने तब तुमहिं पुकारी ॥२१॥
तुमहिं कृपा करि विष्णु जगायो । तेहि कर बध करि स्वर्ग पठायो॥२२॥
जय जय हे मधु-कैटभ नाशिनि।तुम हो भव-भय दुःख विनाशिनि।२३॥
अगणित निशिचर मारि गिराये । तिन कर नाम न जाहिं गिनाये।।२४॥
सब देवन मिलि अस्तुति कीन्हा । होइ प्रसन्न ताकहँ वर दीन्हा॥२५॥
तव पूजन फल अकथ अनूपा । जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥२६॥
राज्यहीन नर जो कोइ ध्यावै । निश्चय पुनः राज्य को पावै ॥२७॥
मोहग्रस्त जो जन भव-भेका । तेहि उर उपजै विमल विवेका॥२८॥
तुम्हरी पूजा करै निरन्तर । सब सुख पावै वह साधक नर ॥२९॥
त्रसित भये जब-जब सुर मुनि नर। कष्ट निवारि दियो इच्छित वर॥३०॥
भक्तिभाव युत ध्यान लगावै । तेहि कर भव-बन्धन मिटि जावै॥३१॥
जो नर धरै तुम्हारो ध्याना । तेहि कर होइ परम कल्याना ॥३२॥

विपद्ग्रस्त होवे नहिं कबहीं । सुमिरन करै तुम्हारो जबहीं ॥३३॥
जन्म कोटि अघ जीव नशावै । सन्मुख जबहिं तुम्हारे आवै ॥३४॥
कथा तुम्हारी परम पुनीता । भक्तन हित दुष्टन यमदूता ॥३५॥
कुष्ठी रोगी जो कोइ ध्यावै । निश्चय व्याधिरहित होइ जावै ॥३६॥
दोउ नवरात्रन पाठ कहावै । पूर्णाहुति दिन होम करावै ॥३७॥
विप्र जेवाँइ देइ बहु दाना । सफल मनोरथ होवै नाना ॥३८॥
सत्य बात यह सुनहु हमारी । निशिदिन सुमिरन करहु विचारी ॥३९॥
जो यह पाठ करै मन लाई । अन्तकाल दुर्लभ गति पाई ॥४०॥

दोहा—देवरिया मण्डल बसूँ, ग्राम मझौली राज ।
शिवदत्त मिश्र सुनाम है, पूरण हो मम काज ॥

इति देवरिया-जनपदान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति वाराणसी) वास्तव्येन पण्डित-श्रीसन्त-शरणमिश्रात्मजेन आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिणा सङ्कलिता सम्पादिता च पाठोपयोगि-विविध-विषयोपेता

मन्त्र-प्रतिलोम-दुर्गासप्तशती समाप्ता